This is a digital copy of a book that was preserved for generations on library shelves before it was carefully scanned by Google as part of a project to make the world's books discoverable online.

It has survived long enough for the copyright to expire and the book to enter the public domain. A public domain book is one that was never subject to copyright or whose legal copyright term has expired. Whether a book is in the public domain may vary country to country. Public domain books are our gateways to the past, representing a wealth of history, culture and knowledge that's often difficult to discover.

Marks, notations and other marginalia present in the original volume will appear in this file - a reminder of this book's long journey from the publisher to a library and finally to you.

Usage guidelines

Google is proud to partner with libraries to digitize public domain materials and make them widely accessible. Public domain books belong to the public and we are merely their custodians. Nevertheless, this work is expensive, so in order to keep providing this resource, we have taken steps to prevent abuse by commercial parties, including placing technical restrictions on automated querying.

We also ask that you:

+ *Make non-commercial use of the files* We designed Google Book Search for use by individuals, and we request that you use these files for personal, non-commercial purposes.
+ *Refrain from automated querying* Do not send automated queries of any sort to Google's system: If you are conducting research on machine translation, optical character recognition or other areas where access to a large amount of text is helpful, please contact us. We encourage the use of public domain materials for these purposes and may be able to help.
+ *Maintain attribution* The Google "watermark" you see on each file is essential for informing people about this project and helping them find additional materials through Google Book Search. Please do not remove it.
+ *Keep it legal* Whatever your use, remember that you are responsible for ensuring that what you are doing is legal. Do not assume that just because we believe a book is in the public domain for users in the United States, that the work is also in the public domain for users in other countries. Whether a book is still in copyright varies from country to country, and we can't offer guidance on whether any specific use of any specific book is allowed. Please do not assume that a book's appearance in Google Book Search means it can be used in any manner anywhere in the world. Copyright infringement liability can be quite severe.

About Google Book Search

Google's mission is to organize the world's information and to make it universally accessible and useful. Google Book Search helps readers discover the world's books while helping authors and publishers reach new audiences. You can search through the full text of this book on the web at http://books.google.com/

Hindi Kali 3*

13. A. 12 (b)

Indian Institute, Oxford.

Msc. Ind. c. 153

Digitized by Google

Digitized by Google

Digitized by Google

विक्रमोर्व्वशी

चोटक

अर्थात्

वीरता से दानव को जीत उर्व्वशी का छुड़ा लाना
कवि कुल कमल प्रभाकर महाकवि कालिदासकृत
संस्कृत विक्रमोर्व्वशी नाम चोटक से

प्रयागवासी पण्डित रामप्रसाद तिवारी ने निज देश की
साधुभाषा में अनुवाद करके

श्रीमान् डैरेकृर साहिब के द्वारा

श्रीयुत नव्वाब लेफ़्टिनेंट गवर्नर बहादुर के सन्मुख
निवेदन किया

इलाहाबाद

गवर्नमेंट के छापेख़ाने में छापा गया

सन् १८८१ ई०

Digitized by Google

BODLEIAN
29 JUN 1928
LIBRARY

Digitized by Google

ग्रन्थोक्त पात्रों के नाम

पुरूरवा ·· ··	चन्द्र वंशी राजा
आर्यमाणवक ··	विदूषक
आयु ·· ··	राजपुत्र
गालव ····	भरत मुनि के चेले
पैलव ····	
नारद ·· ··	देवऋषि
तालव्य ····	एक वृद्ध ब्राह्मण
कंचुकी ····	
सूत ······	सारथी
औशीनरी ····	रानी
निपुनिका ····	चेरी
उर्व्वशी ····	अप्सरागण
चित्रलेखा ··	
रम्भा ····	
मेनका ····	
सहजन्या ··	
यवनी ······	परिचारिका—दासी
सत्यवती ·· ··	तपस्विनी

Digitized by Google

Digitized by Google

भूमिका

धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासुच।
करोति कीर्तिं प्रीतिंच साधु काव्य निषेवणं॥

प्राचीन ग्रंथों में काव्य की प्रशंसा इस प्रकार लिखी है कि समीचीन काव्य के सेवन से अल्प बुद्धियों को भी चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति होती है क्योंकि सरस बचन का नाम काव्य है और जब सुन्दर मीठी बात बना के रसायन के साथ कही जाती है तो वह सब को प्यारी लगती है। इसी हेतु से विद्वान लोग अच्छे २ हितकारी मनोरंजन आशयों को एकत्र करके प्रबंध बनाते हैं जिस से जगत को परम लाभ पहुंचता है जैसा वेद का बचन है (एक:शब्द:सुप्रयुक्त: सम्यग्ज्ञात:स्वर्गे लोके च काम धुग्भवति) अर्थात् एक शब्द जो अच्छे प्रकार कहा जाय और भली भांत समझाजाय वह स्वर्ग और लोक दोनों में सुखदाई होता है इस में कुछ संदेह नहीं कि जितने काव्य प्रबंध और कथा वार्ता के ग्रंथ बने हैं वह सब इसलिये कि उनके पढ़ने सुनने से लोगों की बुद्धि आगे को बढ़े और सब को यह विदित होजाय कि काव्य की लावण्यता और चमत्कारी के लिये असंभव और अयुक्तिसिद्ध बात भी कैसी अच्छी बनावट और बुद्धिमानी के साथ कही जाती है॥

काव्य के दो भेद हैं एक श्रव्य अर्थात् सुनने के योग्य जैसे बाल्मीक रामायण आदि दूसरा दृश्य अर्थात् देखने योग्य जैसे

Digitized by Google

नाटक त्रोटक जिसके द्वारा एक पुराना चरित्र प्रत्यक्ष करके दिखाया जाता है जिस प्रकार रामलीला और रासधारियों का नाच कि यह भी पहिले नाटक की भांत हुआ करते थे परंतु अब इनकी योग्यता कुछ अदल बदल गई है जिस समय भारतवर्ष में नाटक की लीला हुआ करती थी उस कालान्तर में छोटे बड़े सब संस्कृत भाषा में ानकार हुआ करते थे क्योंकि जब अताई नट भांड़ उन नाटकों के खेल और कौतुक कर दिखाते थे जो संस्कृत में हैं तो जिनके रिझाने के लिये उनका यह प्रयत्न था उन प्रधानों के संस्कृतज्ञ होने में किसी प्रकार की भ्रांति नहीं हो सक्ती काल की बिचित्र गति है कि अब कितने कुलीन आर्य लोग अपनी देश भाषा को शुद्ध २ नहीं बोल सक्ते तो वह संस्कृत के स्वाद को क्योंकर जान सक्ते हैं धन्य समय प्रभु गवर्नमेंट का है जो यहां की साधु भाषा में उत्तम २ ग्रंथ रचना की रुचि बढ़ा रही है जिसके द्वारा अनेक प्रकार के आशय सब के लिये सुलभ होते जाते हैं ॥

सुकबि कालिदास रचित इस विक्रम उर्व्वशी नाम त्रोटक ग्रंथ का धीर ललित नायक सकल गुण अलङ्कृत परम कीर्तिमान् चन्द्रबंशावतंश महाराजा पुरूरवा हैं जिन्हों ने तीर्थराज प्रयाग के सन्निकट गंगा के उत्तर तट प्रतिष्ठानपुर * में बस कर सम्म्राज्य पद † को भोग किया था ॥

इस ग्रंथ में जो चरित्र वर्णन किया गया है उसका मुख्य आशय यह है कि एक समय परम सुन्दरी उर्व्वशी नाम देवांगना को केशीदानव हरे लिये जाता था उसकी सहेली अप्सराओं की

---

* बादशाही एकावट राज

† जो अब झूंसी कहलाता है

Digitized by Google

दुहाई और आर्तनाद सुनकर राजा पुरूरवा ने अपने बाहु विक्रम और बीरता से दानवें। को मार उर्व्वशी को लाके अप्सराओं को सोंप दिया उसी दिन से उर्व्वशी को राजा के साथ ऐसा प्रेम और अनुराग होगया कि रात दिन उसी के ध्यान में माती रहा करती थी निदान एक समय राजा इन्द्र की सभा में लक्ष्मी स्वयम्बर नाटक की लीला रची गई और उस समय उर्व्वशी लक्ष्मी का भेष धारण किये थी मेनका ने उस से पूछा कि आज इस सभा में सब लोकपाल और बड़े २ प्रधान एकच हैं कहो तुम्हारा चित्त किस में बसता है ?

इसके उत्तर में जहां उसे कहना चाहिये था कि पुरुषोत्तम में तहां उसके मुंह से निकल गया कि पुरूरवा में, यह अनर्थ लीला देखकर नाट्यविद्या के आचार्य भरतमुनि ने क्रोधित होके सराप दिया कि जिस प्रकार तूने हमारी शिक्षा का अपमान किया है वैसा ही तेरा दिव्यज्ञान जाता रहे फिर राजा इन्द्र ने राज ऋषि पुरूरवा को अपना परम मित्र समझ उर्व्वशी को प्रतिष्ठानपुर में जाने की आज्ञा दी और उसका मनोरथ पूरन हुआ—इसी वृत्तान्त के सहारे से कवि कुल तिलक कालिदासजी ने यह अपूर्व प्रबंध बनाया—इस प्रबंध में यद्यपि शृंगाररस प्रधान गिना जाता है परंतु वास्तव में इसका सब आशय बीर रस के मूल पर है और बीर रस की मुख्यता इसके नाम से भी प्रगट है (विक्रम उर्व्वशी) अर्थात् विक्रम से दानव को जीत उर्व्वशी का छुड़ालाना—और इस ग्रंथ का यही आशय गवर्नमेंट इंडिया की उस आज्ञा में उदाहरण की भांत लिखा है जो थोड़े ही बर्ष पहले संस्कृत के पुराने ग्रंथों को खोजकर छापने के विषय प्रकाशित हुई है॥

Digitized by Google

संकेत वाक्य का बिवरण

नाटक चोटक के ग्रंथों में जो संकेत की बातें हुआ करती हैं वह बिना जाने नव सिख लोगें की समझ में नहीं आतीं इसलिये नीचे लिखे अनुसार सब भेद खोल दिया जाता है॥

१—जो बातें (   ) इस प्रकार के घेरे में लिखी हैं वह ग्रंथ की नहीं हैं केवल समझने के निमित्त हैं कि पात्र ने ऐसा काम किया वा ऐसा काम हुआ॥

२—श्रोर जहां (आप ही आप) लिखा है तहां समझना चाहिये कि बात कहनेवाले ने इस प्रकार धीरे से बात कही कि दूसरे को नहीं सुनाई पड़ी॥

३—जहां लिखा है कि (अमुक आया) वा (अमुक का प्रवेश) तहां जानना चाहिये कि वह नेपथ्य से रूप बदल के रंग भूमि में आया श्रोर जहां ऐसा है कि (अमुक गया) वा (अमुक का प्रस्तान) तहां यह समझना चाहिये कि पात्र प्रयोजन के अनुसार लीला करके रंग भूमि से नेपथ्य में चला गया॥

४—जहां किसी पहाड़ वा नगर वा बन आदि का नाम लीला के समय आवे तो जानना चाहिये कि जहां मुख्य चरित्र हुआ है यह उसी का रूपक बना है॥

५—जहां कहीं दे। पात्रों के बात चीत के बीच तीसरे की बात आजावे तहां जानना चाहिये कि उसी प्रसंग की बात दे। पात्र अलग बैठे हुए करते हैं॥

६—जहां लिखा है कि (नेपथ्य में शब्द हुआ) तो वहां जानना चाहिये कि यह शब्द लीला करने के स्थान में नहीं हुआ भेष बदलने की ठौर हुआ है॥

Digitized by Google

विक्रमोर्व्वशी

प्रथम अङ्क

(रंगभूमि में एक मनुष्य आशीर्वाद पढ़ता हुआ आया)

वेदान्तेषु यमाहु रेकपुरुषं व्याप्यस्थितं रोदसी ।
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्य विषय: शब्दो यथार्थाक्षर: ॥
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभि र्नियमित प्राणादिभि र्मृग्यते ।
सस्थाणु: स्थिर भक्ति योग सुलभोनिश्श्रेयसायास्तुव: ॥

अर्थ

वेदान्तों में जिसको एक पुरुष अर्थात् अद्वितीय ब्रह्म कहते हैं जो पृथ्वी और स्वर्ग में व्याप्त होकर स्थित है जिस में ईश्वर यह शब्द अनन्य विषय अर्थात् एकमात्र का वाचक और यथार्थ अक्षरों से अर्थवान् है जिसको मुक्ति के अभिलाषी जन प्राण आदि इन्द्रियों को नियमित करके अन्त: करण में ढूंढ़ते हैं और जो स्थिर भक्ति योग करिके सुलभ है सोई स्थाणु शिव तुम सबों के लिये कल्याण कारी हो ॥

(नान्दी * के पीछे सूत्रधार आया)

सूत्रधार । बस बस अब अति विलम्ब करने से क्या प्रयोजन (नेपथ्य की ओर देखकर) मारिष † यह सभा अगले कबियों

---

* देवता ब्राह्मण राजा आदि की स्तुति जो आशीर्वाद से युक्त हो उस को नान्दी कहते हैं- जैसे मंगला चरन ॥

† नटों में प्रधान ॥

Digitized by Google

के अनेक रस प्रबंध देख चुकी है सो आज मैं भी इस में कालिदास रचित विक्रम उर्व्वशी नाम नये चोटक की लीला किया चाहता हूं तुम पाच वर्ग से कह दो कि वे सब अपने २ स्थान में सावधान हो जायं ॥

(नट आया)

नट । जैसी आज्ञा दीजे ॥

सूत्रधार । इस समय बड़े २ पूजनीय पंडित कुलीन जनों से मैं प्रणाम करके निवेदन करता हूं कि आप को याचकों पर उदारता प्रगट करना ही होगा वा उत्तम वस्तु को बहु आदर मान देना ही पड़ेगा अब आप लोग कालिदास के बनाए हुए इस चोटक को मन लगा के सुनियें ॥

(नेपथ्य * में यह शब्द हुआ)

भो आर्यगण ! रक्षा करो रक्षा करो ॥

सूत्रधार । हे हे अकस्मात् आकाश में विमान चारियों के मुख से करुणा की पुकार सुनाई पड़ती है । यह क्या २ ? (सोचकर) हो हो जाना ॥

नर नामी मुनि के मित्र नारायण ऋषि के उर से जो उर्व्वशी सुर कामिनी उत्पन्न हुई सो आज कुवेर के यहां से लौट कर आती थी जब अर्द्ध पथ में पहुंची तो उसे असुर लोग हरे

---

* रंगभूमि से जाकर जहां लीला करनेवाले रूप बनाते हैं वह स्थान नेपथ्य कहलाता है ॥

Digitized by Google

लिये जाते हैं से उसकी साथ की अप्सरा लोग दोहाई देकर शरण मांगती हैं ॥

(नट और सूत्रधार निकल गए)

(अप्सरा गण आईं)

अप्सरा गण। रक्षा करो रक्षा करो जो कोई इस समय देव पक्ष पातियों में से आकाश चारी हो ॥

(राजा और सारथी का प्रवेश)

राजा। बस बस मत रोओ मैं पुरूरवा हूं अब सूर्य के उपस्थान से निवृत्त हुआ मेरे पास आनकर बतलाओ किस आपत्ति से तुम्हें बचाऊं ?

रम्भा। असुरों के उपद्रव से ॥

राजा। असुरों ने आप लोगों का क्या अपराध किया है ?

रम्भा। महाराज ! हम सब अप्सरा गण कुबेर के भवन से आती थीं सो अभी मांझ रास्ते में चित्रलेखा समेत हमारी प्यारी सखी उर्व्वशी को [जो बड़े तप से भीत इन्द्र का सुकुमार अस्त्र स्वर्ग लोक का अलंकार और सुन्दरता से गरबित श्रीमती गौरी का दूसरा स्वरूप है] कोई दानव हरे लिये जाता है ॥

राजा। अच्छा वह अधम निशाचर किधर गया यह तुम जानती हो ?

अप्सरा। महाराज ! इसी ईशान कोण में ॥

राजा। तो फिर क्या चिन्ता है आप लोग विषाद मत करें मैं अभी आप की सखी के छीनलाने का यत्न करता हूं ॥

अप्सरा। (हर्ष सहित) महाराज ! चन्द्रवंशियों का ऐसा ही धर्म है ॥

Digitized by Google

राजा। फिर आप लोग हमारी प्रत्याशा देखती हुई कहां ठहरेंगी ?

अप्सरा। इसी हेमकूट पहाड़ की चोटी पर ॥

राजा। सूत ! ईशान दिशा की ओर घोड़ों को बेग के साथ बढ़ाओ ॥

सूत। जो आज्ञा (महाराज) (रथको बढ़ाता है) ॥

राजा। (रथके बेगको देख) वाह वाह मेरा रथ तो आज ऐसा जाता है कि इस रथ के बेग से आगे गये हुए गरुड़ को भी पीछे कर सक्ता हूं ॥

कवित्व

पड़त घन मंडल जे वेगबान् रथ आगे हय खर खुरों से चूर चूर ह्वै जात हैं ॥ पहियों के भवंत सब आरों के बीच बीच न्यारे रंग ढंग की अरावलि लखात हैं ॥ तुरग ललाट मध्य कलंगी चंवर आदि चित्र के समान लिखे अचल दिखात हैं ॥ मध्य की पताका जो दबी जात पीछे को थकित पौन मानो हटो सो लखात हैं ॥

(राजा और सूत बाहर निकल गए)

सहजन्या। हे सखि ! राजऋषि तो गए अब चलो हम सब उसी बदी हुई ठौर में ठहरें ॥

मेनका। हां अब चलो वहीं ठहरें ॥

रम्भा। सखि ! क्या राजऋषि हमारे हृदय की फांस को दूर करेंगे ?

मेनका। सखि इस में तुम कुछ संशय न करो ॥

रम्भा। हे हो ! दानवों का जीतना बड़ा कठिन काम है

Digitized by Google

मेनका । तो फिर क्या डर है जब कोई लड़ाई आन पड़ती है तो राजा इन्द्र भी इस राज ऋषि को बड़े सन्मान के साथ बुलाके देवताओं की जीत के लिये सेना के मुख में नियत करता है ॥

रम्भा । महाराज का सर्वथा विजय होगा ॥

मेनका । (क्षणभर ठहर के) सखि ! धीरज धरो धीरज धरो अब डर नहीं देखो हरिन की ध्वजा से सुशोभित महाराज का सोमदत्त रथ दिखाई पड़ता है सो मुझे ऐसा अनुमान होता है कि यह कार्य्य सिद्ध किये बिना कभी न लौटेगा ॥

(निमित्त * की सूचना करके देखती हुई)
ठहरी हैं

(सूत समेत रथ पर चढ़ा हुआ राजा)

आंख मूंदे, चित्रलेखा का दाहिना हाथ पकड़े कांपती हुई उर्व्वशी आई ॥

चित्रलेखा । हे प्यारी धीरज धर धीरज धर ॥

राजा । सुन्दरि ! ढाढ़सबांध २ अब दानवों से कुछ डर नहीं रहा क्योंकि इन्द्र की महिमा तीनों लोक की रक्षा करती है जिस प्रकार रात बीतने पर कमल खिलता है ऐसा ही भय मिटने पर तू अपने विशाल नेत्रों को खोल ॥

चित्रलेखा । हे हे अभी तक प्यारी को चेत नहीं हुआ केवल सांस ही के आने जाने से सजीव जान पड़ती है ॥

राजा । हे चित्र लेखे ! तुम्हारी सखी बहुत डर गई है मन्दार पुष्प की माला से इसका हृदयकम्प भारी जान पड़ता

---

* नाक भौं का फरकना जिससे प्यारे के मिलाप का सगुन समझते हैं उसीका नाम निमित्त सूचना है ॥

Digitized by Google

है क्योंकि विशाल पयोधरों के बीच में जब उसास लेती है तो माला ऊपर को उठ उठ आती है ॥

चित्रलेखा। (करुणा समेत) अयि! उर्व्वशी तनक चेत कर अपने को संभाल अप्सरा सी होजा ॥

दोहा

राजा। मृदु प्रसून याको हृदय कंपत त्यजत नहिं त्रास।
अंचल ऊपर को उठत ज्यों ज्यों लेत उसास ॥

(हर्ष के साथ) अहो चित्रलेखा! बड़ी बात हुई तेरी प्यारी सखी सचेत होती हुई जान पड़ती है ॥

कवित्त

जैसे चन्द्र मण्डल को रुचिर बिकाश देखि अंधकार दूरि होत रात हर्षात हैं ॥ जैसे धूम पुंज कटजाने से पावक की शिखा का प्रकाश निशि अधिक सरसात है ॥ ढाह के गिरत गंगजल क्षण मलिन ह्वै धारा को पाय फिर विमल ह्वै जात है ॥ तैसे या सुन्दरी के हृदय को मोह छूटि धीरे धीरे स्वस्थ मन शान्त दरसात है ॥

चित्रलेखा। अयि! प्यारी उर्व्वशी! ढाढ़स करके उठ शरणागत वत्सल दया सागर महाराज ने देव वैरी दानवों को हटा के निराश कर दिया देख वह सब दुष्ट भगे जाते हैं ॥

उर्व्वशी। (पलक उठाकर) क्या?

महाराज इन्द्र ने अपने अस्त्र जाल को प्रकाशित करके यह विपत्ति दूर की है?

चित्रलेखा। महाराज इन्द्र नहीं, महेन्द्र के समान प्रतापी महाराज पुरूरवा ने यह बिपत्ति छुड़ाई है ॥

उर्व्वशी। (राजा को देखकर आपही आप) दानव राज के भय से इन्हों ने कैसा मेरा उपकार किया है ॥

Digitized by Google

राजा। (उर्व्वशी की ओर देखकर आपही आप) कहते हैं कि सब अप्सरा मिल के नारायण ऋषि के लुभाने और तपस्या भंग करने को गईं जब ऋषि ने अपनी जंघा से उर्व्वशी को उत्पन्न किया तो इसके रूप को देख सब अप्सरा गण लज्जा गईं मुझे संदेह है कि यह ऋषि की रची हुई है वा नहीं॥

सोरठा

याको सिरजनहार जगत कांतिप्रद चन्द्रमा।
अथवा मदन सुनार रस सिंगार वा मास मधु॥
वेद पढ़त दिन राति विषय कला जानत नहीं।
ऋषि पुरान केहि भांति रूप मनोहर रचि सके॥

उर्व्वशी। कहो चित्रलेखा और सब सखी जन कहां हैं?

चित्रलेखा। अभयकारी महाराज जानते होंगे॥

राजा (उर्व्वशी की ओर देखकर) तुम्हारी सखी जन बड़े विषाद में पड़ी हैं उन्हें तुम चल के देखो॥

सोरठा

जो कोउ एकहुबार प्रेम पिया से नैन सों।
देखै रूप तुम्हार बिकल होइ तुम बिन वही॥
सखि जन परम पियारि तन मन धन से हित चहत
सो तव हरन निहारि बिकल होंहि अचरज कउन॥

उर्व्वशी। (आपही आप) इस में कुछ संदेह नहीं कि आपके मुखारविन्द से वचन रूप वा चन्द्रमा से अमृत झरता है (प्रगट) इसी से सखियों के देखने के लिये मेरा जी अकुलाता है॥

राजा। हे सुन्दरि! देखो यह सब सखीजन हेमकूट पर बैठी हुई तुम्हारे मुखको इस प्रकार निरख रही हैं जैसे राहुके मुख से निकले हुए चन्द्रमा को सब लोग देखते हैं॥

Digitized by Google

(उर्व्वशी की दृष्टि राजा की ओर अनुराग से)

चित्रलेखा। एहो सखि! तू क्या देखती है?

उर्व्वशी। हां सखि! मेरे नयन दुख सुख के सज्जन को देखते हैं॥

चित्रलेखा। (मुसक्या के) ऐसा कौन है?

उर्व्वशी। प्रेमीजन॥

रम्भा। (हर्ष से देखकर) देखो सखी एक चित्रलेखा दूसरी प्यारी उर्व्वशी समेत यह राज ऋषि ऐसा बैठा है जैसे विशाखा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा॥

मेनका। (सोचकर) यह दोनें बातें मेरे मनकी हुईं एक तो हमारी प्राणप्यारी सखी फेर मिली दूसरे महाराज का शरीर अक्षत * दिखाई देता है॥

सहजन्या। सखि तुमने तो कहा कि दानवें का जीतना बड़ा कठिन काम है॥

राजा। सूत! पहाड़ का यही शिखर है रथ को ठहरा॥

सूत। जो प्रभु की आज्ञा (रथ को रोकता हुआ)।

(रथ के धक्के से डर के उर्व्वशी राजा को थांभती है)

राजा। आहा! (आपही आप) आज मेरी विषय वासना सफल हुई॥

दोहा

जो यह रथ संक्षोभ से छुयो हमारो अंग।
रोम सहित कंटक मनहुं अंकुरित कियो अनंग॥

उर्व्वशी। (लाज के साथ) एहो चित्रलेखा! तनक उधर तो तूही हट॥

---

* घाव से बचा हुआ॥

Digitized by Google

चित्रलेखा । नहीं मैं नहीं हट सक्ती ॥

रम्भा । चलो सब जनी मिल के परम हितकारी महाराज की अगुआनी और मधुर वानी से शिष्टाचार करें ॥

अप्सरा । हां चलो ऐसा ही करें (सब मिल के चलीं)

राजा । सूत ! रथ खड़ा कर, जब लौं ॥

दोहा

उत्कण्ठित निज सखिन सों मिलै सुन्दरी धाय ।
जिमि शोभा ऋतुराज की रहै लता लपटाय ॥

सूत । जो प्रभु की आज्ञा (रथ को ठहराय दिया)

अप्सरा । जय जय जय, महाराज, आज भाग्य बल से आपने परम विजय प्राप्त किया ॥

राजा । तुम्हारी सखी मिली यही हमारा परम विजय हुआ ॥

उर्व्वशी । (चित्रलेखा का हाथ पकड़े उसी को थांभ रथ से उतर कर)

हे सखियो भली भांत दबा दबा के मुझे भेंटो पहले यह आशा न थी कि फिर तुम सब जनी को आंख भर देखूंगी ॥ (सब सखियां आपस में मिलती हैं)

अप्सरागण । दोहा

महाराज ! रावर सुयश रहै जगत में छाय ।
चिरजीवहु पालहु प्रजा नीति धर्म अधिकाय ॥

सूत । श्रीमहाराज ! वह आकाश से उतरता हुआ एक बड़ा भारी रथ दिखाई देता है ॥

Digitized by Google

दोहा

उतरि गगन से शैल पर चढ़त कौन वर देह।
चामी कर अंगद लसित जिमि बिजुली युत मेह॥

अप्सरा। आ हा! चित्ररथ आप हैं आइये आइये॥

(चित्ररथ आया)

चित्ररथ। (राजा की ओर जाकर)

दोहा

अहो भाग उपकार बड़ कीध्यो सुर गण साथ।
विक्रम महिमा बढ़ चली त्रिभुवन लों महिनाथ॥

राजा। आ हा! गन्धर्वराज (रथ से उतर कर) मित्र! अच्छा हुआ तुम आये (आपस में हाथ मिला के)

चित्रलेखा! मित्र! जब महेन्द्र ने सुना कि केशी दानव उर्व्वशी को हरे लिये जाता है तब इसके छुड़ाने के निमित्त गन्धर्व सेना को आदेश किया फिर इसके पीछे बिमानचारियों के मुख से आपही को विजयरूप यश राशि सुनकर मैं आप के पास आया सो अब चाहिये कि इसको साथ लिये हुए आप भी महेन्द्र से भेंट कीजिये आप ने उनका बड़ा प्रिय कार्य किया॥

पहिले नर नारायण ऋषिवर ने इस परम सुन्दरी को इन्द्र के हेत बनाय दिया और इस समय आप परम मित्र ने दैत्य के हाथ से छुड़ाय दिया॥

राजा। मित्र! ऐसा मत कहो। भला मेरी क्या सामर्थ्य है कि ऐसा काम करूं यह सब महाराज इन्द्र का प्रभाव है जो शत्रुओं से उनके पक्ष वालों की जीत होती है जैसे सिंह

Digitized by Google

के गरज की प्रति ध्वनि पहाड़ की कंदराओं के बीच से उठ कर बड़े २ हाथियों को जीतती है ॥

चित्ररथ। ठीक है आप को योंहीं कहना चाहिये क्योंकि नम्रता ही पराक्रम का भूषण है ॥

राजा। मित्र! महेन्द्र के देखने का यह अवसर नहीं है अब आप ही इनको प्रभु के निकट पहुंचा दीजिये ॥

चित्ररथ। जैसी आप की इच्छा। आओ चलो सब जनी ॥

(सब चलने को खड़ी हुईं)

उर्व्वशी। (आपस में) एहो चित्रलेखा! मैं अपने उपकारी महाराज से बोल नहीं सक्ती तूही मेरा मुख बनजा ॥

चित्रलेखा। (राजा की ओर जाके)

महाराज! उर्व्वशी आप से निवेदन करती है कि जो प्रभु की आज्ञा हो तो अपनी प्यारी सखी के समान आपकी कीर्ति को भी अपने साथ स्वर्ग में लेती जाऊं ॥

राजा। हां हां इस समय आओ जाइए जिस से फिर कभी दर्शन हो ॥

(गंधर्व के साथ सब सखियां बिमान पर चढ़ती हैं)

उर्व्वशी। (गिरने से डरके रुकती हुई) एहो चित्रलेखा! इस लता वृक्ष में मेरी एक लड़ी माला अटक गई है सो तुम छुड़ा दो?

चित्रलेखा। यह तो सखी बड़ी दृढ़ अरुझानि लग गई है मैं नहीं छुड़ा सक्ती ॥

उर्व्वशी। आः बस बस हंसी अभी रहने दो इसे छुड़ाओ।

Digitized by Google

चित्रलेखा। इसका बेग ही छूटना तो कठिन है तो भी छुड़ाती ही हूं॥

उर्व्वशी। (मुसक्याकर) हे प्यारी सखी! अपने इस वचन की सुध रखना॥

दोहा

राजा। मेरो हित कीन्ह्यो लता छण भर राखी रोक।
तिरिछ नैन अध मुख ढपी फिर देखी सुख ओक॥

चित्रलेखा। अरुझनि छुड़ाती है उर्व्वशी राजा को निरखि उसास लेकर रथ पर चढ़ती हुई सखियों को देखती है॥

सूत। महाराज!
सुर वैरी दानवन को खार सिन्ध में डारि।
वायु अस्त्र शर बर बहुरि अप्सरागण दुख टारि॥
अप्सरा गण दुख टारि ऋाप तरकस में प्रविसो।
अपने बिल को पाइ सांप पैठत है जैसो॥

राजा। सूत! रथ को पास लाके खड़ाकर मैं चढ़ लूं।
(सूत ने वैसाही किया राजा रथ पर चढ़ता है)

उर्व्वशी। (राजा को अनुराग से देखती हुई)
अपने उपकारी को फिर देख लूं।

(गंधर्व समेत सब सखी रंग भूमि से बाहर) निकल गईं॥

राजा। (उर्व्वशी जिधर गई उधर मुख किये हुए)
हे हे! मदन कैसा दुर्लभ वस्तु का अभिलाषी है॥

सुर बनिता तनतें करखि लिये जात मन मोर।
यथा हंसिनी ले उड़त कमल तन्तु नल तोर॥

(सब बाहर निकल गये)

यह पहिला अङ्क समाप्त हुआ

Digitized by Google

दूसरा अङ्क

(विदूषक आया)

विदूषक। कहो। नेवतनहार नेवता देने आये हो? जाओ जाओ राजा की वह गुप्त बात खीर के समान अपच होकर मेरा पेट भड़ भड़ा रही है जहां बहुत से लोग इकट्ठे होंगे वहां मैं अपनी जीभ को नहीं रोक सकूंगा सो जब तक महाराज धर्म्मासन पर बैठे रहेंगे तब लो मैं अपना मुंह बंद किये इस देव मंदिर की छत्त पर इकिल्ले ठहरा रहूंगा॥

(मंदिर में दोनों हाथों से मुंह मूंद बैठ गया)

(निपुनिका आई)

निपुनिका। (आपही आप कहती हुई) काशिराजकुमारी महारानी ने कहा है कि हे निपुनिके जब से महाराज सूर्योपस्थान करके आये हैं उनका हृदय शून्य सा दिखाई पड़ता है कदाचित् मन ठिकाने नहीं है सो मुझे भेजा है कि तू आर्य्य मानवक के पास जाके बिरह का वृत्तान्त पूंछ कि महाराज के बिकल होने का क्या कारण है सो वह बात मैं ब्राह्मण से कैसे पूछूं। यह तो मुझे निश्चय है कि तिनके में लगे हुए ओस के पानी के समान उसके पेट में राजा की गुप्त बात न ठहर सकेगी सो देखूं तो वह कहां है (इधर उधर देख के) हो हो यहां तो आर्य्य मानवक है जो गालों पर हाथ रक्खे बूढ़े बंदर की भांति बैठा हुआ कुछ सोच रहा है। अब इसके पास तो चलूं। विप्रजी महाराज! पायलागन॥

विदूषक। कल्याण हो सुखी रहु (आपही आप भुन भुनाके) इस दुष्ट चेरी रांड को देख कर राजा की वह गुप्त बात मानो मेरा पेट फाड़कर निकली सी आवती है (कुछ मुंह खोले हुए)

Digitized by Google

कहो निपुनिका गाना बजाना छोड़ के आज कहां फिर रहीहो ?

निपुनिका। महारानी की आज्ञा से आपही के दर्शन को आई हूं॥

विदूषक। उनकी क्या आज्ञा है ?

निपुनिका। महारानी कहती हैं कि आर्य मानवक का अनुग्रह अब हम पर नहीं रहा जो हमारी दुखदशा की ओर वह दया दृष्टि नहीं करते॥

विदूषक। क्या हुआ हमारे प्यारे मित्र ने कोई ऐसा काम तो नहीं किया जो उनके प्रतिकूल हो ?

निपुनिका। जिस स्त्री के बिरह में महाराज सोचित हैं उसी के नाम से घबरा के महारानीजी को पुकार उठे हैं॥

विदूषक। (आपही आप) क्या कहैं मित्र तुमने आप ही गुप्त भेद खोल दिया तो मैं ब्राह्मण हो के क्यों कर इस समय जीभ को रोक सक्ता हूं (प्रगट) हां हां एक उर्व्वशी नाम अप्सरा है उसको देख कर राजा ऐसे मतवाले हो गए हैं कि अब किसी काम में उन का जी नहीं लगता उन से केवल महारानी ही को क्लेश नहीं पहुंचता बरन मैं ब्राह्मण हूं मुझे भी अपने साथ भूखों मारते हैं॥

निपुनिका। (आपही आप) राजा का गुप्त भेद तो सुन लिया अब जाके महारानी से सब कह दूं॥

(निपुनिका चलने लगी)

विदूषक। हे निपुनिका! काशिराजकुमारी महारानी से हमारा संदेश कहिदेना कि अपने मित्र की मृगतृष्णा बुझाते २ मैं तो थक पड़ा जो आप अपना मुखारविन्द दिखातीं तो वह निवृत्त होती॥

निपुनिका। जो आप की आज्ञा

(नेपथ्य में वैतालिक * पढ़ता हुआ आया)

कवित्व

जैसे प्रभाकर बहु किरनें बढ़ाकर तन कान्ति विकसा कर तमाकर हरतु हैं ॥ तैसे महाराजा अति तेज हू बिसजा करि बिबिध सुकाजा जग दारिद दरतु हैं ॥ भानु अरु रावर को तुल्य अधिकार मानो मध्य दिन गगन रवि चढ़ाक ठहरतु हैं ॥ ताही बिधि दीनबन्धु आपहु बिसराम कीजे छठवें पहर बंदी बिनय करतु हैं ॥

विदूषक। (कान लगाके) यह प्यारा मित्र धर्म्मासन से उठकर इधर होके आवता है मैं इसके साथ हो लूं ॥

(नेपथ्य से प्रवेशक निकल गया)

(चिन्ता से युत राजा और विदूषक का प्रवेश)

दोहा

राजा। देखत ही सुर-सुन्दरी मम हिय गई समाय।
मकर केतु शर बेधि के जो पथ दियो बनाय ॥

विदूषक। काशिराज कुमारी महारानी भी इसी हेतु से बड़ी दुखित हैं ॥

राजा। (विदूषक की ओर देख कर) कहो हमारी गुप्त धरोहर को पेट में रक्खे हो वा नहीं ?

* जो लोग राजाओं की स्तुति और बड़ाई करके जगाते हैं न्हाने खाने सोवने आदि की वेला जताते हैं सोई वैतालिक हैं जैसे नक़ीब ॥

Digitized by Google

विदूषक। (आपही आप) क्या कहें कुछ न बनपड़ा दासी पुत्री रांड़ निपुनिका हमें ठग न ले गई होती तो मित्र क्यों ऐसा कहते॥

राजा। आप चुप क्यों हो रहे?

विदूषक। मैंने तो जीभ को ऐसा रोक रक्खा है जिस से आप को भी कोई उत्तर नहीं है॥

राजा। हां ठीक, अब कहो इस समय किस उपाय से चित्त को बहलावें॥

विदूषक। आओ जेवनार घर में चलें॥

राजा। वहां क्या है?

विदूषक। वहां पांच प्रकार का व्यंजन और अच्छे २ पक्वान् मिठाई पापड़ बने हुए हैं जिनके देखने और खाने से चित्त बहलता है॥

राजा। हां आप तो अवश्य वहां मन मानता भोजन पाके मगन होंगे परंतु मैं दुर्लभ पदार्थ का अभिलाषी क्यों कर चित्त बहला सकूंगा?

विदूषक। हां आप तो उर्व्वशी की दृष्टि में पड़ गये हैं॥

राजा। फिर उस से क्या?

विदूषक। मैं सोचता हूं कि वह आपके लिये कुछ दुर्लभ नहीं है॥

राजा। हां ठीक पर उसका अनोखा मन भावनरूप है॥

विदूषक। भला जो वैसाही कौतुक से मैं उसका दूसरा रूपक बन जाऊं तो मैं भी अनोखा हूं वा नहीं?

राजा। उसके प्रति अंग का वर्णन मैंने नहीं किया और हो नहीं सक्ता इसलिये संक्षेप से कहता हूं सुनो॥

Digitized by Google

विदूषक। हां आप कहिये मैं चित्त लगा के सुनता हूं॥

राजा। मित्र! उसका शरीर आभरणों का आभरण और केश रचना आदि शृङ्गारों का शृङ्गार और उपमान का भी प्रत्युपमान है॥

विदूषक। परंतु आपने इस मृग तृष्णा रस के अभिलाषी बन कर चातकों की वृत्ति ग्रहण की है॥

राजा। हे मित्र! इस समय शीतल वस्तुओं को छोड़ के। और कोई उपाय नहीं है इसलिये आओ प्रमदाबन का मार्ग बताओ॥

विदूषक। (आप ही आप) बड़ी दुर्गति हुई (प्रगट) आप इधर होके आइये॥

(प्रमदाबन में दोनों का प्रवेश)

विदूषक। यही प्रमदाबन है देखो बिना बुलाए दक्षिण की ठंढी पवन आप के सत्कार के लिये विद्यमान है॥

राजा। इस पवन का दक्षिण * नाम ठीक है॥

देखो यह वसन्त की शोभा को सींच सींच कर पुष्प लगाने के योग्य करता और कुन्द लता को नचाता हुआ मुझे कामी सा जान पड़ता है क्योंकि इस में स्नेह और सहायता दोनों योग विद्यमान हैं॥

विदूषक। इसका भी मन आपही के समान एक विषय में चुभ रहा है (झूमता हुआ) अब आप इस प्रमदाबन में प्रवेश कीजिये॥

राजा। मित्र! आगे तुम्हीं चलो॥

---

* अनुकूल। सरल। सीधा। सहायक।

Digitized by Google

(दोनों बाटिका में चले)

राजा। (डरता हुआ) मित्र! जैसा अच्छा उपाय सोच के प्रमदाबन में आये कि यहां कुछ चित्त शान्त होगा सो उस से उलटा हुआ॥

दोहा

जैसे खर जल बेग में बहत पथिक की नाव।
तैसी मेरी गति भई बन बिहार नहि भाव॥

विदूषक। यह कैसे?

राजा। एक तो दुर्लभ वस्तु को चाहत है मन मोर।
ताहू को अति कृश करत मदन पंच शर घोर॥
मदन पंच शर घोर आम को बैार दिखावे।
शीतल मलय बतास तोड़ि तरु पत्र नचावे॥
उपबन की छबि देख उपजु सब के मन छोभा।
धीरज धरु केहि भांति निरखि बिरही यह शोभा॥

विदूषक। बस बस अब आप सोच न कीजिये थोड़े ही दिनों में काम ही काम का सम्पादक और आप का सहायक होगा॥

राजा। अच्छा भाई हमें तो ब्राह्मण के वचन का बड़ा विश्वास है देखें॥

विदूषक। महाराज! देखिये देखिये वसन्त के उतरने से प्रमदाबन में कैसी मन भावन छबि छा रही है॥

राजा। मित्र! मैं वसन्त के पद पद की लीला देख रहा हूं॥

Digitized by Google

मित्र ! देखो सब से आगे कुरुबक * का फूल स्त्री के नख समान रतनार है और उसके दोनों ओर इधर उधर नूतन † अशोक श्याम रंग खिला हुआ है और सब के मध्य भाग में आम का बौर जिस में काला पीला रंग मिला रहता है माने वसन्त की शोभा खड़ी है ॥

विदूषक । अहो महाराज ! देखो तो यह नीलमणि की चटान से शोभित माधवी लता का मण्डप भ्रमर से गिरते हुए फूलों से माने आपके आगत स्वागत के लिये उपचार कर रहा है सो आप इस पर अनुग्रह कीजिये ॥

राजा । जैसी आप की रुचि हो (दोनों बैठ गये)

विदूषक । अब यहां बैठकर ललित लताओं में लोचनों को लगाकर उर्व्वशी हेतु उत्कंठा को हटाकर मनको हर्षित कीजिये ॥

राजा । (उसास लेकर)

उपवन लता सकल विधि फूले ।
शोभित विटप भ्रमर मन भूले ॥
लखि संतोष लहै नहिं लोचन ।
सुर बनिता दर्शन के शोचन ॥
सो उपाय मन करहु बिचारा ।
सकल मनोरथ होय हमारा ॥

विदूषक । (हंस के) जैसे अहिल्या के कामुक इन्द्र का सचिव बज्र था वैसाही उर्व्वशी के विरही आप के मैं हूं सो यहां दोनों मतवारे ॥

---

* लाल रंग का आंवला ॥

† नया ॥

Digitized by Google

राजा। आप कुछ नहीं सोचते ?

विदूषक। अच्छा अब मैं उपाय सोचता हूं पर आप बिलाप करके मेरी समाधि मत तोड़ना (निमित्त सूचना करके आपही आप) वाह वाह मैं कैसा अच्छा उपाय सोचता हूं॥

राजा। जब वह पूर्ण चन्द्रमुखी सुलभ नहीं है तो काम का इतना विकार क्यों बढ़ता जाता है जैसे सिद्ध मनोरथों के सनमुख आने में चित्त की वृत्ति हो जाती है ऐसाही एका एक मेरा मन शान्त होता जाता है॥

(बैठ के सोचता है)

(विमान पर चढ़ के चित्रलेखा सहित उर्व्वशी आई)

चित्रलेखा। उर्व्वशी! बिना बतलाये कहां चलती है ?

उर्व्वशी। (लजाती हुई) हे सखि! हेमकूट पहाड़ की चोटी पर जब लता वृक्ष में मेरी वैजयन्ती माला अटक गई थी और मैंने तुझ से छुड़ाने को कहा तब तू हंस के बोली कि यह तो कठिन अरुझनि पड़ गई है मैं नहीं छुड़ा सक्ती, सोई तू अब मुझ से जाने का कारण पूछती है॥

चित्रलेखा। तो क्या उसी राज ऋषि पुरूरवा के निकट चलती हो ?

उर्व्वशी। हां सखि! लाज शरम छोड़ अब इसी काम में जी बसा है॥

चित्रलेखा। फिर किसी सखी को उनके पास भेजा है ?

उर्व्वशी। अपने हृदय को॥

चित्रलेखा। तो भी मन को रोक के धीरज धर॥

उर्व्वशी। जब मदन मुझे ठेलता है तो धीरज क्योंकर हो॥

Digitized by Google

चित्रलेखा। इसका तो मेरे पास कोई उत्तर नहीं है॥

उर्व्वशी। हे प्यारी सखी ऐसा सुमार्ग देखकर चल जिस से किसी प्रकार का विघ्न न हो॥

चित्रलेखा। सखी ! तू निश्चिन्त रह मुझे बृहस्पति जी ने अपराजिता सिखा बन्धनी विद्या सिखा दी है उसके प्रभाव से असुर आदि के विघ्न का कुछ डर नहीं है॥

उर्व्वशी। (लाज सहित) उसके सारे प्रयोग का स्मरण है ?

चित्रलेखा। सब मेरे पेट में भरा है॥

उर्व्वशी। हां तुम्हारे पेट में तो सभी कुछ है पर मैं ऐसी डर गई हूं कि मन को स्थिर नहीं कर सक्ती॥

(दोनों घूमती हैं)

चित्रलेखा। सखि ! देख देख प्रतिष्ठानपुर का चूड़ामणि यह राज ऋषि का भवन जमुना के संगम से पवित्र गङ्गा जल में झलक मार कर ऐसा शोभायमान है मानों अपने प्रतिविम्ब को आप देख रहा है॥

उर्व्वशी। (प्रेम से देख कर) आहा ! क्या स्वर्ग अपना स्थान छोड़ के यहीं उतर आया है। एहो सखी ! वह शरणागत वत्सल इस समय कहां होंगे ?

चित्रलेखा। इसी प्रमदाबन में जो मानों नन्दन बन का एक खंड है, आओ उतर के ढूंढें॥

(दोनों विमान से उतरीं)

चित्रलेखा। (हर्ष से राजा को देख के)

एहो सखी ! महाराज तो तुम्हारी बाट इस प्रकार जो रहे हैं जैसे चन्द्रमा अपनी कौमुदी * की प्रतीक्षा करता है॥

---

* किरण कला॥

Digitized by Google

उर्व्वशी। (देख कर) प्यारी! प्रथम दर्शन से भी इस समय महाराज का दर्शन अधिक प्यारा लगता है॥

चित्रलेखा। अच्छा ठीक है आओ चलें

उर्व्वशी। मैं तो अभी न जाऊंगी, तिरस्करणी * विद्या बल से महाराज के पास अन्तर्ध्यान होके रहूंगी और वह सब बातें जो अपने मित्र से कर रहे हैं भली भांत सुनूंगी॥

चित्रलेखा। जो तुझे भावे सोई कर॥

(दोनों अन्तर्ध्यान होके खड़ी हुईं)

विदूषक। एहो महाराज! दुर्लभ प्यारे जनों के समागम का उपाय मैंने सोचा॥

(राजा चुप हो रहा)

उर्व्वशी। वह कौन धन्य स्त्री है? जिसे यह ढूंढते हैं जो इन्हें पाके कृतार्थ होगी॥

चित्रलेखा। ध्यान कर के क्यों नहीं जान लेती॥

उर्व्वशी। एका एक भेद जान लेने में डर लगता है †॥

विदूषक। महाराज! मैं निश्चय कर के कहता हूं कि मैंने प्यारे प्रीति मान जन के मिलने का उपाय सोच लिया॥

राजा। मित्र! सो कहिये॥

विदूषक जो नींद आवे तो सो जाइये स्वप्न में अवश्य समागम होगा अथवा उर्व्वशी का प्रतिबिम्ब चित्र फलक में लिख के मन बहलाइये॥

उर्व्वशी। हे हृदय धीरज धर॥

राजा। मित्र! यह दोनों बातें नहीं हो सक्तीं—देखो॥

---

* तिरस्करणी विद्या अन्तरध्यान विद्या अदृश्य विद्या॥

† डर यह कि मन में दूसरे का प्रेम हो तो बड़ी लाज लगेगी॥

Digitized by Google

दोहा

कहां नींद कहं सपन सुख कसकत हिय शर मैन ।
चित्र लखों केहि विधि सखा सलिल भरे दोउ नैन ॥

चित्रलेखा । सखि तू ने वचन सुना ॥

उर्व्वशी । सुनतो लिया फिर भी पेट नहीं भरा ॥

विदूषक । मित्र ! और मैं क्या कहूं बस मेरी बुद्धि की दौर यहीं तक है ॥

राजा । (उसास लेकर)

कवित्व

जानत सो न कठोर व्यथा मन में हमरे जस होत कसाला
प्रीति की रीति बड़ी गहरी बहरी सी भई न सुने मम हाला ॥
योग प्रभावहुतें लखि के अनुरागी हमैं न गनै वह वाला
मो फलहीन मनोरथ को लखि जी हरखो शर पंच कराला * ॥

उर्व्वशी । (सखी की ओर देख के) एहो चित्रलेखा ! मुझ को धिक्कार है । हाय हाय महाराज मेरे साथ इतना अनुराग रखते हैं और मुझ से यह भी नहीं हो सक्ता कि एक बार सन्मुख हो के अपने को दिखाऊं । सो मैं चाहती हूं कि प्रभाव रचित भोजपत्र में मानसिक भाव लिख के उनके पास छोड़ दूं सो तू क्या कहती है ?

चित्रलेखा । बहुत अच्छा सिद्ध कर ॥

(उर्व्वशी नाच के द्वारा पत्र लिख के छोड़ती है)

विदूषक । है है यह क्या यह क्या सुनो जी ! मुझे काट खाने के लिये यह सांप की केंचुल गिर पड़ी है ॥

---

* काम के पांचो बाण कराल ॥

Digitized by Google

राजा। (देख कर) सांप की केंचुल नहीं है यह तो भोजपत्र है इसमें कुछ अक्षर लिखे हैं॥

विदूषक। अचरज नहीं कि उर्व्वशी अदृश्य होके आपका विलाप सुनती रही हो उसी ने भोज पत्र में अपने परम प्रेम के सूचक अक्षरों को लिख के छोड़ दिया हो॥

राजा। देवताओं को यह बात कुछ कठिन नहीं॥ (हाथ में लेके हर्ष से पढ़ा) मित्र! तुम्हारा अनुमान ठीक उतरा॥

विदूषक। जो इस में लिखा है सो सुना चाहता हूं॥

उर्व्वशी। वाह वाह द्विजराज आप बड़े नागर हो॥

राजा। सुनो (यह पढ़कर)

कवित्व

प्राणपति क्या कहूं वर्णन कछू नहि कह जाय।
दुख माहि तुम्हरो कटत दिन सुख वर्ग मोहि कटाय*॥
पारिजात प्रसून सज्जा स्वर्ग महं रमनीय।
तब विरह विच नहि मोहि भावत यदपि अति कमनीय॥
इन्द्र कानन बीच आवत सुखद मलय बतास।
मन्द शीत सुगंध युत अरु देखि विमल अकाश॥
भयो सो विपरीत गुण सब लगत तन महं ताल।
प्रीति रावरि कियो बावरि कछू नाहि सोहात॥

उर्व्वशी। देखें इस समय महाराज क्या कहते हैं॥

चित्रलेखा। और कहेंगे क्या? मुरझाये कमलसा शरीर का रंग देखती हो फिर भी तुम्हारी समझ में नहीं आता॥

---

* सुख के वर्ग मुझको काटते हैं॥

Digitized by Google

विदूषक। बड़े भाग की बात है कि यह पत्र मुझ भूखे ब्राह्मण को स्वस्ति वाचनिक * के समान मिला जो आपके ढाढ़स का हेतु है॥

राजा। मित्र! इसे केवल ढाढ़स का कारण क्यों कहते हो। देखो तो इस पत्र में प्यारी का रचित ललित आशय दोनों के तुल्य अनुराग का सूचक ऐसा है कि मानों उस मनोहर नयना का मुख साक्षात् आनकर मेरे मुख से मिल गया है॥

उर्व्वशी। यह हमारे तुम्हारे मन की भावना एकसी है॥

राजा। मित्र! मेरी उंगलियों के पसीने से अक्षर मिटे जाते हैं सो प्यारी के प्रेरित पत्र को आप अपने हाथ में ले लीजिये॥

विदूषक। जिस उर्व्वशी ने आपके मनोरथ रूपी वृक्ष में फूल फुलाया है सो क्या वह फल न दिखावेगी?

उर्व्वशी। एहो चित्रलेखा! जब तक लाज के मारे मैं पास नहीं जा सक्ती तब तक तुही चल के मेरा अभिप्राय प्रगट कर॥

चित्रलेखा। परदे को हटा (राजा के निकट जाके)

जयतु जयतु महाराजः॥

राजा। बहुत अच्छा हुआ तुम आई आओ बैठो (इधर उधर देखके) हे भद्रे! जैसे तूने पहले दर्शन में मुझे हर्षित किया था आज निज सखी से रहित होकर वैसा आनन्द नहीं दे सक्ती जैसे कोई जमुना को गंगा के साथ मिली हुई देखे हो फिर इकिल्ली देखे तो क्या वैसा ही प्रसन्न होगा?

चित्रलेखा। महाराज! प्रथम मेघ माला उठती है पीछे बिजुली चमकती है॥

---

* मिठाई लड्डू पूरी आदि॥

Digitized by Google

विदूषक। (आपही आप) उर्व्वशी क्यों नहीं आई यह तो उसकी सहेली है॥

राजा। सखि! इस आसन पर बैठ जाओ॥

चित्रलेखा। (बैठकर) उर्व्वशी सिर से प्रणाम करके निवेदन करती है॥

राजा। क्या आज्ञा देती है?

चित्रलेखा। वह यह कहती है कि जब मुझे दानव हरे लिये जाता था तो उस विपत्ति में महाराज ही शरण हुए और अब आपके दर्शनानुराग रूपी खड्ग से मदन मेरे अंग को बार बार छेदता है सो मुझ पर फिर महाराज का अनुग्रह प्रगट हो॥

राजा। हे सखि जाय कहो उन से यदि मेरे लिये विरहातुर है॥
देखती नाहिं पुरूरवा कों दुख तेरेहिसों नृप आतुर है॥
प्रेम समान दोऊ दिशि के अब यत्न करो जिम बात रहै॥
लोह सुतप्त मिले संग तात सो तू सबही विधि चातुर है॥

चित्रलेखा। (उर्व्वशी के पास जाके) अयि सखि! अब तुम भयानक मदन को अति कोमल स्वरूप देखो क्योंकि अब मैं तुम्हारे प्यारे की दूती बनके आई हूं यहां आओ॥

उर्व्वशी। (शोक से कांपती और डरती हुई) हे सखि बेगही अब मैं तुझ से छुट जाऊंगी *॥

चित्रलेखा। (मुसक्याकर) अभी तो देखूंगी कौन किसको छोड़ता है, सचेत हो जाओ॥

उर्व्वशी। (सकुचाती हुई) जयतु जयतु महाराजः॥

राजा। (हर्ष से) जो तुमने जय, ऐसा कहा तो मैं जय को प्राप्त हुआ क्योंकि यह जय शब्द इन्द्र के निकट से मेरे पास आया है॥

---

* अर्थात् काम की पीड़ा से राजा के मरने पर मैं भी जल्दी मरूंगी॥

Digitized by Google

(हाथ धर के आसन पर बैठाया)

विदूषक। वाह कैसी आप की मर्य्यादा है जो राज मित्र ब्राह्मण को प्रणाम किये बिना बैठ गई हो॥

उर्व्वशी। (मुसक्याकर) पंडित जी पायलागन॥

विदूषक। आपका कल्याण हो सुखी रहो॥

(नेपथ्य में देव दूत बोला)

एहो चित्रलेखा! उर्व्वशी को साथ लेकर बेगही चलो, आठों रस करिके परिपूर्ण भरत मुनि का रचित लक्ष्मी स्वयम्बर नाटक जो तुम सभों को सीखने के लिये सौंपा गया है सो उस ललित नाटक की लीला को महाराज इन्द्र देखा चाहते हैं॥

(सब कान दिये हुए सुनते हैं उर्व्वशी विषाद में है)

चित्रलेखा। सुना तुमने देव दूत का वचन? महाराज से बिदा की आज्ञा मांगो॥

उर्व्वशी। (उसास लेकर) मुझ से यह न कहा जायगा॥

चित्रलेखा। महाराज! उर्व्वशी निवेदन करती है कि मैं परवश हूं जो आपकी आज्ञा मिले तो देवराज के आदेश का प्रतिपालन करूं॥

राजा। (क्यों क्यों यह कहकर) मैं आप के प्रभू की आज्ञा भंग नहीं करा सक्ता परंतु इधर की सुध रखना॥

(उर्व्वशी वियोग से दुःखित राजा को देखती हुई सखी समेत बाहर निकल गई)

राजा। (उसास लेकर) अब यहां ठहरना व्यर्थ है॥

विदूषक। (पत्र दिखाने के लिये) भोज (यह आधा शब्द कहके फिर आपही आप) क्या कहूं बड़ा धोखा हुआ उर्व्वशी

Digitized by Google

के देखने में मैं ऐसा बेसुध होगया कि वह भोज पत्र मेरे हाथ से न जाने कहां खसक पड़ा ॥

राजा। क्या कहा चाहते हो ?

विदूषक। मैं यह कहा चाहता हूं कि विरह के दुख में देह त्याग न कीजिये उर्व्वशी आप के प्रेम से बंध गई है इस समय चली गई तो क्या हुआ यह प्रीति की गांठ कभी न ढीली होगी ॥

राजा। मेरे मन में भी ऐसा ही आता है क्योंकि चलने की बिरियां उसने उसास लेकर स्तन कंपाने आदि लक्ष्य से सूचित किया है कि शरीर परवश और मन अपने आधीन सो आप में रक्खे जाती हूं ॥

विदूषक। (आपहीं आप) बाबा मेरा तो जी कांपता है यह मित्र कब तक भोजपत्र का नाम रटता रहेगा ॥

राजा। एहो मित्र ! इस समय हमारा मन बहुत व्याकुलसा हो रहा है कहो किस वस्तु से जी बहलावें ? (सुध· करके) वही भोजपत्र लाओ दो तो ॥

विदूषक। चकबका के इधर उधर देख हे हे वह भोजपत्र तो नहीं मिलता न जाने क्या हो गया ? कदाचित् वह दिव्य भोजपत्र उर्व्वशी के साथ ही साथ चला गया ॥

राजा। (झिड़की देकर) क्या कहूं तुम ऐसे निपट अनारी हो कि तुम्हारे सब काम ऐसे ही होते हैं ॥

विदूषक। भला ढूंढ़ तो लूं (इधर उधर नाच के) यहां तो नहीं है यहां तो नहीं है ॥

(निपुनिका और परिजन समेत औशीनरी * आई)

* रानी ॥

Digitized by Google

औशीनरी। हे निपुनिके! सत्य कह तूने महाराज को आर्य्यमाणवक समेत लतागृह में जाते देखा है?

निपुनिका। स्वामिनी! क्या मैं कभी आप से झूठ बात बोली हूं?

रानी। अच्छा मैं लता की ओट से सब भेद की बात सुनेंगी देखूं जो तूने कहा है सो सच है वा नहीं॥

निपुनिका। जैसी आप की इच्छा॥

रानी। (घूमकर आगे देखती हुई) एरी निपुनिका! यह क्या है नये चीर के समान दक्षिण पवन में उड़ा आता है?

निपुनिका। यह तो भोजपत्र सा दीखता है परन्तु इतना नहीं निश्चित होता कि इसमें क्या लिखा है देखिये वह आप के नूपुर से आन कर मिल गया है (पत्र हाथ में ले कर) इसे आप पढ़ैं तो॥

रानी। ऐसा नहीं पहले तू आपही आप पढ़ जो कोई विरुद्ध बात न हो तो मैं भी सुनूंगी॥

निपुनिका। (पत्र पढ़ के) अहो स्वामिनी! यह तो वही लोकापवाद की बात है महाराज के नाम उर्व्वशी के हाथ की लिखी कविता है यह आर्य्यमाणवक की असावधानी और भूल से हमारे हाथ आया॥

रानी। अच्छा पढ़तो सही॥

(चेरी पढ़ती है)

रानी। चल यही भेंट लेकर अप्सरा के प्रेमी को देखें॥

निपुनिका। जो देवी की आज्ञा॥

राजा। हे बसन्त के मित्र दक्षिण पवन! आप अपने को सुगंधित करने के लिये लताओं के पुष्परज को ले लिया कीजिये

Digitized by Google

परन्तु मेरी प्यारी के लिखे हुए पत्र के चुराने से आप का क्या काम निकलेगा यह बात तो आप भली भांत जानते हैं कि इसी प्रकार के हस्त लेख के पढ़ने और चित्र फलक देखने आदि सैकड़ों विनोदों से विरही लोग प्राण को धारण किये रहते हैं नहीं तो वे क्षणमात्र न जी सकें ॥

निपुनिका। महारानी! देखिये इसी पत्र की खोज होरही है॥

रानी। चुप चुप, यहीं बैठ जा ढूंढने दे देखें पीछे क्या करते हैं॥

विदूषक। भाई! यह क्या यह क्या! हो हो नील कमल के समान इस मोर पंख की छबि देख मैंने जाना कि यह वही भोज पत्र है॥

राजा। मेरा भाग फूट गया बस बस सब प्रकार से मरा॥

रानी। (झपट के पास जाकर) भो आर्य्य पुत्र! बस बस आप इतना दुखी क्यों होते हैं लीजिये वह भोज पत्र यही है॥

राजा। (भय से आपही आप) है है यह क्या हुआ रानी आगई (प्रगट) (सकुचाता हुआ) भो देवि! आइये अच्छा हुआ आप आईं॥

रानी। इस समय मेरा आना अच्छा नहीं हुआ क्योंकि आपको उसका विघ्नकारी है॥

राजा। (आपस में) मित्र कहो अब क्या करें॥

विदूषक। (आपस में) जब चोरी की वस्तु पकड़ी गई तो फिर क्या उपाय चलेगा?

राजा। (झिड़क के) हे मूढ़! यह हंसी का समय नहीं है (प्रगट) मैं यह पत्र नहीं ढूंढता उस पर तो देवता का मंत्र लिखा है॥

Digitized by Google

रानी। अपना सोहाग ऐसा ही छिपाना चाहिये॥

बिदूषक। महारानी! आप बेगही भोजन मंगाइये जिस्से पित्त के निवृत्त होने पर इनका चित्त शान्त हो जायगा॥

रानी। निपुनिका तू देख तो सही, इस ब्राह्मण ने कैसा अच्छा संभाला है कि हमारा मित्र क्षुधा से विकल है॥

विदूषक। हां हां आप देखिये अच्छा भोजन पाने से सब कोई प्रसन्न होता है॥

राजा। अरे मूर्ख! ऐसी २ बातें से मुझे तू क्यों अपराधी बनाता है?

रानी। आपका कुछ अपराध नहीं है यहां सर्वथा मैं अपराधिनी हूं जो आपके प्रतिकूल दर्शना हो के सामने हुई, निपुनिका इधर आओ चलें॥

(रिसा के चली)

दोहा

राजा। अपराधी मैं आप का करहु शांत अब रोष।
कुपति होंहि जब सेब्य तो सेवक किमि निरदोष॥

(पांव पर गिरता)

रानी। हे धूर्त! मैं ऐसी अज्ञान नहीं हूं कि इस बिनय को ग्रहण करूं तुम से मुझे डर लगता है कि वही तुम जो कोमल हृदय होकर अब बिनय करते हो सोई तुम मेरे आने से पाश्चात्ताप करते थे॥

निपुनिका। महारानी इधर होके आइये॥

(रानी परिजनों समेत रंगभूमि से निकल गई)

विदूषक। यह तो बरसाती नदी की नाईं रिसाई हुई चली गई सो आप भी उठिये॥

Digitized by Google

राजा । (उठकर) मित्र! यह बात तुमने नहीं समझी देखा ॥

दोहा

रस बिहीन पिय बिनय सुनि उपजत तिय हिय सोग ।
रंगों झूठ मणि गहत नहिं रत्न पारखी लोग ॥

विदूषक । यह आप का वचन ठीक है क्योंकि जिसकी आंख दुखने के आती हैं वह दिया की ज्योति नहीं देखसक्ता ॥

राजा । मित्र! ऐसा मत कहो यद्यपि उर्व्वशी में मेरा मन अटक गया है ताे भी मेरे निकट देवी विशेष सन्मान की पात्र हैं परंतु जो वे मेरे बिनय को मेट के चली गई हैं ताे मैं भी धीरज धरके चुप हो रहता हूं ॥

विदूषक । दीनबन्धु ! बस बस अब देवी जी की कथा रहने दीजिये मारे भूखों के जीव जाता है चलके इसका कुछ उपाय कीजिये देखिये न्हाने खाने की बेला पहुंच गई है ॥

राजा । (ऊपर की ओर देख के) क्या ठीक मध्यान्ह हो गया, इसी से ॥

कवित्व

धूप से तपित ह्वै मोर तरु सोर ओर ठंढे २ थांवले में बैठे छहात हैं ॥ बड़हर के बड़े २ फूलों में छेद करि शयन के हेत सब मधुकर समात हैं ॥ तप्त जल छाेड़ि थल कमल के नीचे देखो कैसे बिकल हंस हंसी झुके जात हैं ॥ क्रीड़ा घर मांहि लखो तृषित शुकादि पक्षी पिंजर में पानी पानी २ चिचियात हैं ॥

(दोनों रंगभूमि से बाहर निकल गये)

॥ दूसरा अङ्क समाप्त हुआ ॥

Digitized by Google

तीसरा अङ्क

(भरत मुनि के दो चेले आये)

पहिला चेला। अहो भाई! पैलव! जब अग्नि गृह से गुरू जी महेन्द्र के भवन जाने लगे तो तुम आसन लिये हुए उनके साथ गये थे और मैं अग्नि शाला की रक्षा के लिये यहीं रह गया था सो तुम से यह पूंछता हूं कि गुरू जी के रचित नाटक के प्रयोग देखने से देवसभा संतुष्ट हुई थी वा नहीं?

दूसरा चेला। मैं यह नहीं जानता कि वह कैसी संतुष्ट हुई, परंतु जिस समय सरस्वती कृत लक्ष्मी स्वयम्बर नाटक की लीला होने लगी है उस समय प्रेम रस की कथा होते होते उर्व्वशी एक बार मतवाली सी हो गई॥

पहिला चेला। तुम्हारी बात से यह भाव निकलता है कि उस समय उर्व्वशी से कुछ भूल हो गई थी॥

दूसरा चेला। मैं तो कहता हूं कि कहने को और थी मुंह से और ही कुछ निकल आया॥

पहिला चेला। यह कैसे?

दूसरा चेला। लक्ष्मी के भेस में उर्व्वशी और बारुनी के भेस में मेनका थी जब मेनका ने पूंछा कि इस समय तीनों लोक के पुरुष और केशव समेत संपूर्ण लोकपाल आये हैं कहो तुम्हारा मन किसके बिषय लगा है?

पहिला चेला। फिर क्या हुआ?

दूसरा चेला। जहां उसे कहना चाहिये था कि पुरुषोत्तम में तहां उसके मुंह से निकल आया कि पुरूरवा में॥

पहिला चेला। भवितब्यता ही के अनुसार बुद्धि और इंद्रियां हो जाती हैं फिर क्या उस पर मुनि क्रोधित नहीं हुए?

Digitized by Google

दूसरा चेला। गुरू जी ने तो तुरंत सराप छोड़ा फिर इन्द्र ने अनुग्रह करके उद्धार कर दिया॥

पहिला चेला। यह कैसे?

दूसरा चेला। गुरू जी के मुख से यह वचन निकला कि जैसा तूने मेरे उपदेश का उल्लङ्घन किया है ऐसा ही तेरा दिव्यज्ञान जाता रहे यह सुन कर उर्व्वशी ने मारे लाज के नीचा सिर कर लिया तब देवराज ने अनुग्रह करके कहा कि जिस राजऋषि के प्रेम में तू बंधी है वह हमारा रण सहायक मित्र है उसका प्रिय काम अवश्य करना चाहिये इसलिये तुम अपनी इच्छानुसार पुरूरवा के यहां जाओ जब तक तुम्हारी कोख से राजा की सन्तान न मिले तब लों उसके साथ रहो॥

पहिला चेला। अन्तर्यामी देवराज को जैसा उचित था वैसा ही उन्हों ने किया॥

दूसरा चेला। (सूर्य की ओर देख के) भाई! बात करते करते स्नान की बेला हो गई आओ अब गुरू जी के पास चलें॥

(दोनों बाहर गये)

(फिर कंचुकी आया *)

कंचुकी का नाम राजनिघंट में लिखा है कि कोई वृद्ध ब्राह्मण राजाओं के यहां रनिवास में इसलिये नियत रहता है कि कोई पुरुष महल में न जाने पावे और जो पुर की स्त्रियां आवें जावें उनको देख भाल लिया करे॥

तिसका लक्षण भरत मुनि ने इस प्रकार लिखा है॥

श्लोक

अन्तः पुर चरो विप्रो वृद्धो गुण गणान्वितः।
सर्व कार्यार्थ कुशलः कञ्चुकी त्यभिधीयते॥
जरा वैक्लव्य युक्तेन विशद् गात्रेण कञ्चुकी।

Digitized by Google

(कंचुकी बोला)

सबै जवानी में करत धन सञ्चय व्यापार।
बृद्ध भये सुख सोवही सुतहि सौंपि गृह भार॥
सुतहि सौंपि गृह भार पार भवसागर के हित।
धर्म करैं बहु भांति लाइ जगदीश्वर में चित॥
मुंहि सोइ बुढ़ाई आपदा है प्रति दिन दुख देति है।
नारि बीच की चाकरी मान प्रतिष्ठा लेति है॥

ब्रत नियम से युक्त श्री काशिराज कुमारी महारानी ने मुझे यह आदेश किया है कि ब्रत की पूर्णता के निमित्त जैसे प्रथम मैंने मान को छोड़ निपुनिका के द्वारा प्रार्थना की थी ऐसा ही तू भी मेरा संदेश महाराज से कहदे कि आज संध्या कार्य से निवृत्त होने पर मैं महाराज को देखूंगी॥

(इधर उधर देखके)

दिन के बीतने पर राजमंदिर कैसे अच्छे प्रकार से सजकर शोभायमान हो रहा है॥

कवित्व

मन्दिर मनोहर मनि खचित सुखंभ माहिं मोर अलसात चित्र लिखे से दिखात हैं॥ जालियों से धूपित सुगन्ध धूम पुञ्ज उठि भ्रम सें कबूतर के झुंड से लखात हैं॥ जहां जहां फूल उपहार दिया बारि बारि तहां तहां देत बृद्ध लोग हर्षात हैं॥ संध्या कौ मंगल सुदीप दीपमालिका सी जग मध्य चारों ओर अधिक सोहात हैं॥

Digitized by Google

(इधर उधर देख के)

हां ठीक वह महाराज विराजमान हैं जिनके चारों ओर परिजन की स्त्रियां दीपावलि हाथ में लिये हुए ऐसी शोभित होती हैं कि मानों पक्ष सहित चलायमान पहाड़ के चारों ओर से फूले हुए बड़हर के वृक्ष घेरे खड़े हैं ॥

जिधर देखते हैं उसी ओर चलके खड़ा हो हूं ॥

(यथोचित बात चीत ठहर कर परिवार समेत राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा । (आपही आप)

दोहा

अलप कष्ट सों दिन कट्यौ राज काज कों देख ।
बिन बिनोद लम्बी निशा क्यों बितिहै दुख रेख ॥

कञ्चुकी । (पास जाके) जयति जयति देवः, महाराज! महारानी को यह बिनती है कि अटारी की मणि जड़ित छत पर चन्द्रमा अतिशय प्रकाशित होता है सो जब लों चन्द्रमा रोहिणी का संयोग रहे तब तक वहीं चलके आप विराजिये ॥

राजा । जाओ कह दो महारानी का जो अभिलाष सोई होगा ॥

कंचुकी । जो आज्ञा ॥

(कंचुकी बाहर गया)

राजा । मित्र! महारानी का यह आरम्भ सच मुच ब्रत ही के निमित्त है ?

विदूषक । महाराज! मुझे तो जान पड़ता है कि इस समय उन्हें उस बात का परिताप हुआ है कि जो उस दिन

आप के बिनय को मेट कर चली गई सो उन्हों ने उसी प्रणिपात उल्लङ्घन अपराध छुड़ाने के लिये ब्रत के मिस से यह युक्ति रची है॥

राजा। आपने ठीक कहा, जो बुद्धिमान नारी प्रथम क्रोध में आनकर पति के बिनय का अपमान कर बैठती हैं फिर पीछे प्यारे की नवतना समझ मन में पछिताय पछिताय दुख पाती हैं॥

अब कहो अटारी पर किधर होके चलें॥

विदूषक। आप इधर होके चलिये देखिये यह स्फटिक मणि की सीढ़ी गङ्गा के शीतल तरंगों से कैसी ठंढी होगई है इसी पर पांव रख कर उस मनोरंजन अटारी की मणि जटित छत पर चलिये॥

(राजा के पांव रखते ही सब लोग सीढ़ी पर चढ़ने लगे)

विदूषक। (देख कर) अब देखिये चन्द्रमा निकलने चाहता है ज्यों ज्यों अंधकार हटता जाता है त्यों त्यों पूर्व दिशा की प्रभा लाल होती हुई दिखाई पड़ती है॥

राजा। आप का अनुमान ठीक है॥

दोहा

शसि मंडल निकसो नहीं किरण कियो तम नाश।
निर्मल ह्वै अति फबत है पूरव दिशा प्रकाश॥
सो मेरे दोउ नयन कों लगत मित्र! अति प्यार।
यथा बटोरे अलक लट दरसत मुख उजियार॥

विदूषक। हो हो क्या अच्छा खांड़ का लड्डू सा चन्द्रमा निकल आया है॥

राजा। (मुसक्या कर) पेटू का मन सर्व्वत्र खाने ही की बस्तु में रहता है॥

Digitized by Google

(प्रणाम कर के यह पढ़ा)

श्लोक

* रुचि मा बहते सतां क्रियायै सुधयातर्पयते पितृन् सुरांश्च।
तमसां निशि मूर्च्छतां निहन्त्रे हर चूड़ा निहतात्मने नमस्ते॥

अर्थात्

सज्जनों की क्रिया के निमित्त दीप्ति को धारण करते हो और सुधा करि के पितर और देवताओं को तृप्त करते हो और रात के समय अंधकार को मूर्च्छित कर के हर लेते हो और महादेव के शिर पर विराजते हो तुम्हें नमस्कार है॥

विदूषक। महाराज! ब्राह्मण के मुख से जो अक्षर निकलें उन्हें आप ऐसा समझिये कि मानों ब्रह्मा आज्ञा देते हैं-आप बैठ जाइये तो मैं भी सुख से बैठूं॥

(विदूषक की बात मान बैठ गया परिजनों की ओर देख के बोला)

राजा। अब चांदनी बहुत अच्छी खिल आई है दीपकों का कुछ प्रयोजन नहीं रहा बस तुम लोग जाओ आराम करो॥

परिजन। जो प्रभु की आज्ञा॥

(सब बाहर निकल गये)

---

*रुचिमा बहते सतां क्रियायै इस का तात्पर्य्य यह है कि जब शुक्ल पक्ष में पूर्ण चंद्रमा होता है तो व्रत उपनयन आदि शुभ कर्म्म किये जाते हैं-और सुधयातर्पयते पितृन् सुरांश्च-इसका भाव इस प्रकार निकलता है कि सोमोत्पत्ति प्रकरण में लिखा है कि चंद्रमा की १६ कलाओं को १६ देवता पीते हैं इस क्रम से (१अग्नि)(२सूर्य) (३विश्वेदेव) (४वरुण) (५वषट्कार) (६इंद्र) (७ऋषि) (८अजैकपात) (९यम) (१०वायु) (११उमा) (१२पितर) (१३कुबेर) (१४पशुपति)(१५ प्रजापति) फिर १६ वीं कला रहती है देख नहीं पड़ती उसी से फिर शुक्ल पक्ष में बढ़ता है॥

Digitized by Google

राजा। (विदूषक की ओर देख के) मित्र।
महारानी जी के आने को अभी दो दंड रहे हैं तब लों अपनी दशा खोल के कहता हूं॥

विदूषक। महाराज! सुनों यद्यपि यहां उर्व्वशी प्रत्यक्ष नहीं है परंतु उसके अनुराग का अनुमान करके आप अपनी आत्मा को धीरज दे सक्ते हैं॥

राजा। हां यह तो ठीक है परंतु मन का परिताप बड़ा प्रबल होता है जैसे बड़े २ पत्थरों को रुकावट से नदी का प्रवाह उमग कर कई धारों से बहने लगता है ऐसा ही समागम सुख में विघ्न होने से काम कई गुना बढ़ के सताता है॥

विदूषक। जैसे आप विरह व्यथा से दुर्बल होते हुए अंगों से शोभायमान हैं ऐसाही अप्सराओं के समागम से आप को हर्षित भी देखूंगा॥

राजा। (शुभ सगुन सोच के) मित्र! जैसे आप अपने बचनों से आशा दे दे कर मुझ महा व्यथित को धीरज देते हैं ऐसा ही मेरी दाहिनी भुजा भी फ़रक फ़रक के ढाढ़स दे रही है॥

विदूषक। महाराज! क्या ब्राह्मण का वचन निष्फल होगा?

(राजा प्रत्याशा देखता बैठा है)

(उर्व्वशी अभिसारिका * का भेस धारण किये हुए चित्रलेखा समेत विमान पर चढ़ के आई)

उर्व्वशी। (अपनी ओर देख के) हे सखि! मोतियों के आभरण से भूषित और नील कान्त † मणियों से जड़ित यह अभिसारिका भेस मुझे कैसा फबता है?

---

* जो नायका आपही संकेत स्थान में नायक के पास जाय॥
† काले रंग का मणि॥

Digitized by Google

चित्रलेखा। क्या कहना है मेरी जीभ में इतनी सामर्थ्य नहीं कि बड़ाई करूं परंतु यह सोचती हूं कि इस समय में पुरूरवा होती॥

उर्व्वशी। सखि! अब मुझ से नहीं रहा जाता तू उसे बेग ही ला वा मुझी को उसके पास लेचल॥

चित्रलेखा। देख रात्रिरूपा जमुना में तेरे प्यारे का राज भवन ऐसा झलकता है मानों श्रीमान कैलाश पर्व्वत का प्रति बिम्ब है॥

उर्व्वशी। ऐसे ही योग बल से तनक देख तो सही वह मेरे हृदय का चोर कहां बैठा है?

चित्रलेखा। (आपही आप) इसके साथ चल के तब लों मन को ही बहलाऊंगी—(प्रगट) हे सखि मैंने देख लिया राज काज से निश्चिन्त होके विश्राम का अवकाश पाय प्यारी के समागम का अनुभव करता हुआ बैठा है॥

उर्व्वशी। जाओ सखी तुम्हारी बात पर मुझे परतीत नहीं पड़ती तू मन में सोच सोच के क्या बकती है समागम तो आज होने को है इस ने तो पहिले ही से मेरे हृदय को चुरा लिया है॥

चित्रलेखा। यह देख अटारी पर एक मित्र को साथ लिये हुए बैठा है आओ वहीं चलें॥

(विमान से दोनों उतरीं)

राजा। हे मित्र! ज्यों ज्यों रात बढ़ती है त्यों त्यों काम की व्यथा अधिक होती जाती है

उर्व्वशी। इसके वचन का अर्थ प्रगट नहीं है इस कारण मेरा जी कांपता है आओ छिपके सब बात चीत सुनें जिस से संदेह दूर होजाय॥

Digitized by Google

चित्रलेखा। जैसी तुम्हारी रुचि हो॥

विदूषक। पृथ्वीनाथ! इन अमृत स्वरूप चन्द्र किरणों को आप क्यों न सेइये॥

राजा। मित्र इन उपायों से यह ताप नहीं मिट सक्ता इस व्यथा में फूलों की सय्या वा चन्द्रकिरण वा अंगों में मलयागिर चन्दन का लेपन वा मनोहर मणियों का हार गुण-कारी नहीं हो सक्ता इस परिताप को वही दिव्यांगना दूर कर-सक्ती है वा उसकी कथा वार्ता से कुछ शान्ति हो॥

उर्व्वशी। रे मन! जैसा मुझे छोड़ के इधर चला आया वैसा ही तूने उसका फल पाया॥

विदूषक। मित्र! मुझे भी इस समय पके हुए आम्र फल और शिखरिणी * नहीं मिली सो मैं उसी के सोच में बिकल हूं॥

राजा। मित्र! तुम तो इन वस्तुओं को तो अभी पासक्ते हो॥

विदूषक। तो आप भी उसे शीघ्रही पावेंगे॥

चित्रलेखा। सुनले तुझे अब भी संतोष नहीं होता॥

राजा। मित्र! ऐसाही मेरे मन में भी एक बात समागई है॥

विदूषक। कैसे?

राजा। रथके धक्के से डरके हमारे जिस अंग को उसने हाथों से छूलिया है मानों उतनाही अंग तो कृतार्थ हुआ और सब पृथ्वी का भारमात्र है॥

---

* भैंस का मीठा दही और स्वेत शर्करा और दूध को मिट्टी के बर्तन में एकत्र करके उस में इलायची लवंग मरिच छोड़ने से शिखरनी बनती है वसन्त ऋतु को छोड़ और दिनों में इस के सेवन से पुष्टता प्राप्त होती है॥

Digitized by Google

उर्व्वशी। अब अधिक विलम्ब क्यों करूं (झट-पट पास जाके) एहो चित्रलेखा! मैं महाराज के आगे खड़ी हुई तो भी कुछ न बोले॥

चित्रलेखा। (मुसक्याकर) अपनी उतावली प्रकृति को तनक रोके रह॥

(नेपथ्य में यह शब्द हुआ) महारानी इधर होके इधर होके॥

(सब लोग कान देकर सुनते हैं और उर्व्वशी विमन होके चित्रलेखा के साथ खड़ी है)॥

विदूषक। एहो मित्र! चुप चुप महारानी आवती हैं॥

राजा। अच्छा तुम भी भलमनसी से सम्हल के बैठो॥

उर्व्वशी। हे सखि! अब क्या करना चाहिये?

चित्रलेखा। कुछ घबराने की बात नहीं है तुम अदृश्य होके तो खड़ी ही हो और महारानी किसी व्रत का नियम पूरा करने के लिये आई हैं सो रीत भांत करके अभी चली जायंगी अधिक क्षण तक न ठहरेंगी॥

(उपहार लिये हुए परिजनों के साथ महारानी आईं)

महारानी। (चन्द्रमा को देखके) यह चन्द्र मंडल रोहिणी के साथ होने से क्या अच्छा शोभित हो रहा है!॥

चेरी। स्वामिनी के समागम से स्वामी की भी विशेष शोभा होगी॥

(दोनों चलीं)

विदूषक। मैं जानता हूं कि यह स्वस्ति वाचनिक देने को आती हैं वा चन्द्रव्रत के मिस से आप पर अपनी प्रसन्नता प्रगट करने के लिये चली हैं आज मेरी आंखों में महारानी का दर्शन बहुत अच्छा भावता है॥

Digitized by Google

राजा। (मुसक्या कर) स्वस्ति वाचनिक भी करना है और वह बात भी ठीक है जो आपने पीछे कही है॥

देखो उज्जल वस्त्र को पहिने और सब गहनों को उतार केवल मंगलकारी श्वेत फूल की माला को भूषण की भांति धारण किये हुये हैं और बालों में गुथे हुए दूब के चित्र विचित्र अंखुवे कैसी सरल प्रकृति को प्रगट करके शोभित हो रहे हैं कि इसने ब्रत नियम के मिस से सारी गर्भ वृत्ति को छोड़ दी इन्हीं सब शरीरिक चिन्हों से लक्षित होता है कि यह मुझे प्रसन्न करने को आवती हैं॥

रानी। (पास जाके) जयतु जयतु आर्य्यपुत्रः॥

परिजन। जयतु जयतु देवः॥

विदूषक। आपके लिये मंगल हो॥

राजा। देवि! स्वागतं (अर्थात् अच्छा हुआ आप आईं)

(हाथ से पकड़ के बैठाया)

उर्व्वशी। इसके साथ जो महाराज ने देवी शब्द का उच्चारण किया सो ठीक है क्योंकि यह प्रकाश और दीप्ति में इन्द्राणी से न्यून नहीं है॥

चित्रलेखा। बड़ाई करने के लिये तेरे कोई और मुख है॥

महारानी। आर्य्यपुत्र! आपके सन्मुख होते हुए मुझे एक ब्रत पूरा करना है सो मुहूर्त मात्र यह उपरोध आपको सहना पड़ेगा॥

राजा। भो माणवक! यह उपरोध तो बड़ा अनुग्रह है॥

बिदूषक। हांजी, ऐसे ही स्वस्ति वाचनिक करते हुए मुझे अनेक उपरोध हुआ करें॥

Digitized by Google

उर्व्वशी। अब अधिक विलम्ब क्यों ... है ?
जाके) यहो चित्रलेखा! मैं महाराज के ... (बने लगी)
कुछ न बोले॥

... भर्तृप्रियप्रसादन है॥

चित्रलेखा। (मुसक्याके ... की ओर देखकर) हे कल्याणि! आप तनक रोके रह॥

... कमलसदृश कोमलगात्र को बिना कारण क्यों

(नेपथ्य में यह ...

... रात दिन तुम्हारी प्रसन्नता का अभिलाष

(सब लोग ... दास जनको आप क्या प्रसन्न करेंगी॥

चित्रलेखा ...

वि ... (विस्मित होके) ई: ! इसका इतना आदर सन्मान॥

उर्व्वशी।

चित्रलेखा। सुन भोली! जिन नायकों का चित्त दूसरी ओर लगजाता है वह अपने घर में अधिक सरल भाव प्रगट करते हैं॥

महारानी। यह ब्रत ही का प्रभाव है जो महाराज ऐसे वश हो गये॥

विदूषक। (राजासे) बस बस आप रहने दीजिये मित्र की बात का खंडन करना उचित नहीं॥

महारानी। हे छोकरियो! पूजा की सब सामग्री लाओ इस अटारी पर फैली हुई चन्द्र किरणों की पूजा करूं॥

परिजन। जो आपकी आज्ञा यह सब उपहार विद्यमान है॥

(थिरक के फूलों से चन्द्र किरन को पूजती हुई)

महारानी। लाओ मुझे दो इस उपहार और लड्डुओं से आर्यमाणवक और कंचुकी की पूजा करूं॥

परिजन। हे आर्य्यमाणवक! महारानी कहती हैं कि आप इस स्वस्ति वाचनिक नैवेद्य को ग्रहण करके कल्याण वचन कहिये॥

Digitized by Google

विदूषक। (लड्डु का कटोरा हाथ में लेकर) मंगल मस्तु का कल्याण हो इस ब्रत से अनेक फल मिलें॥

रजन। रहो कंचुकी! यह नैवेद्य तुम्हारे निमित्त है। लो॥

कंचुकी। (नैवेद्य उठा के) महारानी का कल्याण हो॥

महारानी। भो आर्य्यपुत्र! आप इधर आइये॥

राजा। मैं यह बैठा हूं॥

(रानी राजा को पूज के दोनों हाथ जोड़े प्रणाम करती हुई बोली)

महारानी। ये मिथुन देवता स्वरूप रोहिणी चन्द्रमा को साक्षी देकर मैं आर्य्यपुत्र को प्रसन्न करती हूं कि आज से आर्य्य पुत्र जिस स्त्री को चाहते हैं और जो कोई स्त्री आर्य्य पुत्र के समागम की अभिलाषिणी हो उसके साथ बिना रोक टोक रहा करें॥

उर्व्वशी। आं यह क्या कह रही है इसके वचन का तात्पर्य्य तो मैं नहीं जानती परंतु बिश्वास करके मैंने सत्य समझ लिया॥

चित्रलेखा। हे सखि! पतिव्रताओं का बड़ा प्रभाव होता है उसने अन्तस का भाव प्रगट कर दिया अब तुम्हारे प्यारे का शीघ्र समागम होगा॥

विदूषक। (आप ही आप) जब अहेरी के हाथ से अहेर निकल जाता है तो वह यही कहता है कि जाओ चले जाओ मैंने छोड़ दिया धर्म ही होगा (प्रगट) फिर महाराज आपके क्यों कर प्यारे ठहरे?

महारानी। मूर्ख! मैं अपना सुख बंद करके आर्य्यपुत्र का सुख चाहती हूं बस इतने ही में समझ लो कि आप प्यारे ठहरे वा नहीं॥

Digitized by Google

राजा। हे असहनशीले! आप मुझे चाहो जिस स्त्री को दे दो चाहे अपना ही दास बनाये रहो परंतु मैं आप की ओर से वैसा नहीं हूं जैसा आप सन्देह करती हैं॥

महारानी। जो कुछ हो प्रियप्रसादन व्रत की जैसी रीति भांति होती है सो मैंने सब पूरा कर लिया। एहो छोकरियो आओ चलें—यह हम जाती हैं चली आओ॥

राजा। यह क्या प्रसन्न किये हुए प्यारे को छोड़ के चली जाती हो॥

महरानी। भो आर्य्यपुत्र! जो नियम की रक्षा न करूं तो अभी सब पुण्य जाता रहे॥

(परिजनों समेत महारानी चली गई)

उर्व्वशी। सखि! राज ऋषि तो अभी तक कलत्रप्रिय * जान पड़ते हैं परंतु क्या करूं मैं भी अपने मन को नहीं फेर सक्ती॥

चित्रलेखा। जब मन को आशा बंध गई तो वह क्यों लौटने लगा॥

राजा। (आसन से उठकर) कहो मित्र! अब तो देवी दूर तक निकल गई होगी?

विदूषक। हां आप कहिये अब कुछ डर नहीं जैसे बैद्य रोगी को असाध्य समझ के त्याग देता है ऐसाही वह तुम्हें छोड़के चली गई॥

राजा। कौन उर्व्वशी?

उर्व्वशी। (आप ही आप) आज मैं कृतार्थ हुई॥

---

* अपनी ब्याही स्त्री के प्यारे॥

Digitized by Google

राजा। रहिरहि पांव उठावे ऐसो आहट गति लखाय नहिं कैसो।
घूंघुर मधुर मंद ध्वनि करई सो परि श्रवन अमृत जनु झरई॥
अथवा पग उठाय अति धीरे पीछे पहुंच जाय जब नेरे।
निज कर कमलन सों मम नैना मूंद लेइ बोले नहिं बैना॥
वा उतरै यह दिव्य अटारी ठमकत चलत लाज वश नारी।
पग पग ठेलि सखी गुन खानी लावे ममढिग कहि मृदुबानी॥

चित्रलेखा। अयि उर्व्वशी! अब इसके ऐसे मनोरथ को पूरन कर॥

उर्व्वशी। (लाज के साथ) अच्छा एक प्रकार का कौतुक करूं जाय॥

(पीछे से उर्व्वशी ने दोनों हाथ से राजा की आखें मूंदलीं और चित्र लेखा सैन से विदूषक को थांभने लगी)

राजा। (स्पर्श का अनुमान करके) मित्र! क्या यह वही है जो नारायण ऋषि की उरू से उत्पन्न हुई थी॥

विदूषक। आप ने क्योंकर जाना?

राजा। इस में जानना क्या है जो वह न होती तो हाथों से छूते ही मेरा सारा शरीर क्यों पुलकित होके भर आवता सूरज की किरणों से कुई नहीं फूलती वह चन्द्रमा ही की किरणों से खिल उठती है॥

उर्व्वशी। हे हे! मेरे दोनों हाथ बज्र लेप होकर ऐसे चिपट गए हैं कि अब मैं छुड़ा नहीं सक्ती॥

(उर्व्वशी मुसक्याती हुई आखों से हाथ खींच लाज सहित कुछ हटके खड़ी हुई)
जयतु जयतु महाराज:॥

चित्रलेखा। मित्र! आप रहे तो सुख में॥

Digitized by Google

राजा। यही परम सुख है जो ऐसा संयोग हुआ॥

उर्व्वशी। सखि! महारानी ने महाराज को मुझे दे दिया इस से केवल इतना ही समझो कि प्रेमवती होके समीप रहूं मुझे अनुचित करनेवाली मत जान॥

विदूषक। क्या आप दोनों जनों को यहीं सूर्य्यास्त हुआ है?

राजा। (उर्व्वशी की ओर देखकर) जो महारानी जी ने मुझे तुम्हें दे दिया तो मेरे शरीर में जो व्यापार चाहो करो परंतु पहिले तुमने किसके कहने से मेरा हृदय चुरा लिया है बताओ?

चित्रलेखा। मित्र! यह इस बात का उत्तर नहीं दे सकेगी अब मैं जो कहूं सो सुनिये॥

राजा। हां हां कहो मैं सब सुनता हूं॥

चित्रलेखा। बसन्त काल बीतने पर धूप काल में मुझे सूर्य्य की उपासना करनी है इसलिये मैं जाती हूं आप को ऐसा बर्त्ताव करना चाहिये कि हमारी प्यारी सखी स्वर्ग का सुख समझके सोचित न हो॥

विदूषक। स्वर्ग में क्या है जिसकी सुध करेगी, न वहां कोई खावे न पीवे केवल मछली की नाईं एक टक लगाये देखते रहते हैं॥

राजा। मित्र! ऐसा मत कहो॥

दोहा

क्यों बिसरै है स्वर्ग को सुख अपूर्व्व वर बास।
यह एके रमनी शिखा मैं साधारन दास॥

चित्रलेखा। अयि प्यारी उर्व्वशी मैं तेरा बड़ा अनुग्रह मानूंगी अब हर्ष समेत मुझे बिदा कर॥

उर्व्वशी। (करुणा सहित चित्रलेखा को भेंट कर)

Digitized by Google

छिपायो भट्ट मुझे बिसराइयो मती ॥

चित्रलेखा। (मुसक्याकर) अब मित्र का समागम हुआ है यही मैं भी तुम से मांगती हूं ॥

(राजा को प्रणाम कर चित्रलेखा निकल गई)

विदूषक। भाग्य बल से मनोरथ पूरन हुआ अब चैन कीजिये ॥

राजा। इस मनोरथ सिद्धि को तो देखो ॥

एक छत्र महि राज पाय भोगत प्रभुता पद।
सकल भूप शिर मुकुट मणिनसों रंजित दोउ पद ॥
रथ दल गज दल तुरंग दल बहु पैदल दल को गिनै।
सब अधीन निश दिन रहत देखत ही जय जय भनै ॥
तथा कृतारथ नहिं भयो यथा आज सुन मित्र मनि !।
या प्यारी के चरण को आज्ञा कारी कान्त बनि ॥

राजा। (उर्व्वशी को हाथ से थांभ के) देखो तो कैसा आश्चर्य्य है जो वस्तु तुम्हारे वियोग के समय रूखी और कसेली जान पड़ती रहीं वेही तुम्हारे समागम से हमारे अनुकूल हो गई और काम के पांचों बाण मन को अधिक सोहाते हैं ॥

उर्व्वशी। महाराज की दासी से बड़ा अपराध हुआ ॥

राजा। हे सुन्दरी ! ऐसा तुम मत कहो ॥

दोहा

जो दुखदाई सोइ सुखद रस मूंदो न लखात।
तरु तल जाड़ा शीत ऋतु ग्रीषम पथिक छहात ॥

विदूषक। हे सुमुखि ! देखो प्रदोष काल की मनोहर चन्द्र किरण फैल गई हैं इस समय आप को घर के भीतर प्रवेश करना चाहिये ॥

Digitized by Google

राजा। तो आप इन्हें भीतर जाने का मार्ग बतला दीजिये॥

विदूषक। आप इधर होके चलिये॥

(उर्व्वशी भीतर को चली)

राजा। हे सुन्दरि! अब मेरी यह प्रार्थना है॥

उर्व्वशी। सो कैसी?

राजा। मनोरथ पूर्ण होने से प्रथम यह रात सौगुनी हो गई थी सोई अब तुम्हारे समागम में फिर वैसी ही बढ़े तो मैं कृतार्थ होऊं॥

(सब बाहर निकल गए)

॥ तीसरा अङ्क समाप्त हुआ॥

Digitized by Google

चौथा अङ्क

(नेपथ्य में सहजन्या और चित्रलेखा के प्रवेश का सूचक गान)

प्यारी सखि केर बियोग विमन भट्ठु भूले।
बिलपत सरिवर तीर कमल जहं फूले॥

(सहजन्या सहित चित्रलेखा आई)

चित्रलेखा। (चारों ओर देखकर) गान॥

सर बिच बिरह बिकल दोउ हंसिनि।
स्रवत नैन सहचरि गुण संसिनि॥

सहजन्या। (खेद सहित) कुंभिलाये हुए कमल के समान तेरे मुख की द्युति जो श्याम पड़ गई है इसका क्या कारण है? अपने हृदय की कथा कह सुनाओ जिस से मैं भी तेरे दुख की साथिनी बनूं॥

चित्रलेखा। अप्सराओं की रीति क्रम से अब मैं सूर्य्योपस्थान के लिये खड़ी हूं क्या करूं इस समय मेरी प्यारी उर्व्वशी साथ नहीं है और वर्षाकाल आन पहुंचा यही मेरे दुःख का कारण है॥

सहजन्या। जैसा तुम दोनों का आपस में विलक्षण प्रेम है सो तो मैंने जान लिया अब यह बतलाओ कि फिर हुआ क्या?

चित्रलेखा। इन्हीं दिनों मैंने ध्यान में देखा था कि उसका क्या समाचार है सो जान पड़ा कि वह बड़े संकट में है॥

सहजन्या। आं! यह कैसा?

चित्रलेखा। संपूर्ण राज्य का भार मंत्री को सौंप उर्व्वशी इक्षिल्ले राजऋषि को साथ लेकर गंध मादन पहाड़ पर बिहार करने को गई है॥

Digitized by Google

सहजन्या। आमोद प्रमोद के लिये जैसा चाहिये वैसे ही अच्छे रमणीक मनोरंजन स्थान में पहुंचे फिर क्या हुआ?

चित्रलेखा। तिसके अनन्तर वहीं मन्दाकिनी गंगा के तट पर विद्याधर की एक उदकवती नाम कन्या खेलती थी उस पर एक क्षण भर राजा की दृष्टि पड़ गई इसी बात पर उर्व्वशी रिसा उठी॥

सहजन्या। आहा! उर्व्वशी से इतना भी न सहा गया राजऋषि के साथ उसे कितना बड़ा प्रेम था॥

चित्रलेखा। इसके पीछे राजा ने बहुत बिनती की परंतु उसने एक भी न मानी भरथमुनि के शाप वश से देवताओं के नियम को भूल उस कुमार बन में घुस गई जहां स्त्रियों का जाना वर्जित है सो वहां प्रवेश करते ही बनके अन्त भाग में उसका रूप लता के भाव को प्राप्त हो गया॥

सहजन्या। हाय हाय! बिधाता की गति बड़ी दुर्घट है देखो तो उसने ऐसे अपूर्व रूप की ओ रही दशा कर दी फिर अब क्या हो रहा है?

चित्रलेखा। तब से वह राजऋषि उसी बन में मतवाला सा हो कर प्यारी सखी को ढूंढ़ता फिरता और उर्व्वशी कहके दिन रात काटता है देखो तो बादरों की घटा उठने से विरक्तों को भी बिरह सताता है तो फिर उसकी व्यथा का क्या ठिकाना है॥

(गान)

सर बिच बिरह बिकल दोउ हंसिनि।
स्रवत नैन सहचरि गुण संशिनि॥

सहजन्या। अहो सखी! कहो इन दोनों के मिलाप का भी कोई उपाय है?

चित्रलेखा। गौरी के चरणराग से जो संगम मणि उत्पन्न हुआ है उसे छोड़ के और कौन उपाय बतलाऊं॥

सहजन्या। सखि! ऐसे बिलचण रूपवाले प्राणी बहुत दिन तक दुःख नहीं पावते मेरे अनुमान में आता है कि समागम का कोई उपाय अनुग्रह का कारण बनके अवश्य प्रगट होगा (पूर्व की ओर देखके) देखो अब सूर्योदय की वेला है आओ सूर्य का उपस्थान करें॥

(नेपथ्य में गान)

सहचरि दर्शन की लोलुप ह्वै बिरह विकल सखि दोऊ।
बिकसित कमल सरोवर के तट विचरत हंसिनि सोऊ॥

(दोनों सखी बाहर निकल गईं)

प्रवेशक *

(नेपथ्य में गान †)

प्रिया बिरह मद से मतवारा पर्व्वत शिखर सदृश तन भारा
फूल पात तरु लता लपेटे तृण पल्लव पथ चलत समेटे॥
इत उत भ्रमत फिरत अति छाजा मनहुं गहन पैठो गजराजा।

(उन्मत्त होके आकाश की ओर लक्ष्य करता हुआ राजा आया)

राजा। अरे! दुष्ट राक्षस खड़ा रह खड़ा रह मेरी प्यारी को लिये कहां चला जाता है?

(ऊपर देखकर)

---

* प्रवेशक उसको कहते हैं जो नीच पात्र बनके धीरे २ बात करे वा गावे वा कुछ पढ़े॥

† इस गान में राजा की अवस्था का वर्णन है॥

Digitized by Google

क्या पहाड़ की चोटी से आकाश में पहुंच मुझ पर बाण बरसाता हे ॥

(ढेला उठाके मारने को दौड़ा फिर दोनों एड़ी उठाके देखने लगा)

(गान)

हिय तिय बिरह बिकल पर कम्पित सरमहं फिरत प्रेमरस बंचित।
ढूंढ़त युबक हंस निज नारी उभय नयन पूरित शुचबारी ॥

राजा। (करुणा सहित सोचकर) यह कैसे !

चढ़ी हुई यह घन घटा नहिं वह राकस पाप।
खिची दूर लों इन्द्र धनु मैं जानूं शर चाप ॥
यह तो जल की बूंद हे नहिं बानों की धार।
चमकत सो हे बीजुली नहि मेरी प्रियनार ॥

(मूर्छित होके गिरता और उसास लेकर उठता हुआ)

मैं जानगया मेरी मृगलोचनी को कोई निशाचर हरे लिये जाता हे जब से नई बिजुली वाले काले काले बादर बरस रहे हैं ॥

(करुणा सहित चिन्ता करिके)

फिर वह कहां गई होगी ?

कदाचित् अपने योग बल से कहीं छिपी हो बहुत बिलम्ब तक वह कभी कुपित न रहेगी स्वर्ग में चली गई होगी तो वहां से फिर उतरेगी क्योंकि उसका मन आर्द्र भाव से मुझ में लगा हुआ हे और असुरगण ऐसे समर्थ नहीं हैं कि उसे मेरे आगे से हर ले जायं फिर यह क्या बात हे ? कि वह आंखों से अन्तर्ध्यान होगई ॥

(अनुराग सहित इधर उधर देख के) हाय हाय ! भाग्यहीनों को पांव पांव पर दुख मिलता हे ॥

Digitized by Google

इस समय मुझे जो उस प्यारी का बियोग सता रहा है सो किसी से नहीं सहा जाता देखो नयें नये बादरों ने छोह करके सूर्य को ऐसा ढांप लिया है कि राजछत्र का कुछ प्रयोजन नहीं रहा॥

(गान)

जल धर! कोप संभालहु मानि निदेश।
बरसत क्यों घन धारा सिगरो देश॥
और छोर पुहमी भ्रमि जब तिय पैहों।
फिर जैसा कुछ करि हो सब मैं सैहों॥

(जल धर कोप संभालहु)

(फिर सोच के)

जब मुनि लोग भी ऐसाही कहते हैं कि राजा ही युग * अर्थात् समय का कारण है तो मैं वृथा अपने मन का संताप बढ़ाता हूं और वर्षा काल को बर्जता हूं॥

(हंस के उठा और ऊपर की बात को फिर के कहा)

(गान) गंध माति मधुकर गन गावहिं।
कोकिल नाद तान अति भावहिं॥
पल्लव कांपत बहत समीरा।
नचत कल्पतरु प्रेम अधीरा॥

---

* महा भारत में लिखा है कि राजा ही युग का कारण है जिस समय जैसा राजा होता है उस समय वैसा ही युग लग जाता है जब राजा दंड और नीति को विधि के साथ बर्तता है तो सतयुग की प्रवृत्ति होती है और जब दंड नीति में एक अंश घट जाता है तो वही काल त्रेता कहलाता है और जब दंड नीति में दो अंश घट जाते हैं तब द्वापर लगता है इसी प्रकार जब राजा दंड नीति को छोड़ सर्वथा अन्याय से प्रजा को सतावे तो उसी समय का नाम कलियुग है॥

BODLEIANA

Digitized by Google

(आप भी नाच के)

वर्षा काल को अब कुछ न कहूंगा क्योंकि यह बरसाती चिन्ह रूपी राजसी उपचारों से हमको अपना महाराजा जान के शिष्टाचार करता है ॥

(हंस के फिर गंध माति मधुकर इस पद को गाया)

सो क्यों कर ?

यही घन घटा विचित्र चांदनी और बिजुली सुनहरी रचना है और वेतस वृक्षों की जो मंजरी कांपती है सो मानों हमारे ऊपर चंवर ढुलता है धूपकाल का अन्त और वर्षा का आगम देख जो मयूरी मयूर मधुर * स्वर से बोलते हैं सो बंदीगण होके हमारी बड़ाई के पद पढ़ते हैं और यह सब बादर जल धारा रूपी भेंट देने को झुके आवते हैं इस से बढ़के और क्या गौरवता होगी ॥

उपचार की बड़ाई करने से क्या मिलेगा तब लौं इस बन में अपनी खोई हुई प्यारी को ढूंढूं ॥

(गान)

दयिता रहितो अधिकं व्यथितो विरहानुगतो मन उन्मथितो।
गिरि कानन के कुसुमज्वल के गज यूथपतिः तनक्षीण गतिः ॥

(चारों ओर देख कर)

हो हो ! इन सदृश वस्तुओं को देख कर मेरे बिरह की व्यथा अधिक बढ़ती जाती है ॥

---

* यह बात प्रसिद्ध है कि वर्षा के आगम में मोर का स्वर मधुर हो जाता है ॥

Digitized by Google

दोहा

जल गर्भित कदली कुसुम सुध दे करत अचैन।
हिय रिसितें आंसू भरे रतनारे तिय नैन॥

ऐसा मैं क्योंकर जानूं कि इधर होके प्यारी गई है वर्षा से भीगी हुई इस कोमल बनस्थल की बालुकामयी भूमि पर जो प्राण प्यारी गुरु नितम्बों के भार से नीचे लचती हुई चलती तो महावर से रंगे हुए उसके चारु चरणों के चिन्ह अवश्य धरती में उपट आते॥

(इधर उधर घूम के देखता हुआ)

हो हो! एक चिन्ह तो दिखाई पड़ा जिस से विदित होता है कि वह रिसाई हुई इसी बाट होकर गई है॥

इस में कुछ संदेह नहीं है कि यह सुआ पंखी रंग की अंगिआ मारे क्रोध के गिर पड़ी है॥

प्यारी के होठों की ललाई जो आंसुओं के साथ गलित होके बही है इस पर जहां जहां उसके छींटे पड़े हैं वह कैसे लाल लाल चटकारे दाग दीखते हैं देखूं तो यही बात है वा और कुछ (घूम घूम के देखता हुआ) हे हे! प्यारी की अंगिया कहां है यह तो हरी हरी घासों पर बीर बहुट्टियां पड़ी हुई हैं अब मैं क्योंकर इस बन में प्यारी के जाने का अनुमान कर सक्ता हूं॥

(इधर उधर देखकर)

यह कौन है? जो उछल २ के पत्थरों पर बैठता है। हां हां ठीक यह तो मोर है जो अपने सन्मुख पुरवैया पवन को पाय बादरों की घन घटा देख देख कंठ को लचा के नाच रहा है॥

चलके इस से पूंछूं कि भाई तू मेरी प्यारी का कुछ समाचार जानता है॥

Digitized by Google

(नेपथ्य में गान)

बिरह माति गजपति चहुं झूमे प्यारी दर्शन लगि बन घूमे॥
(फिर गान)

बिनय हमार सुनहु प्रभु मोरा॥
घूमत फिरत रहत तुम बन में लखत भेद चहुं ओरा।
कहुं दृग पंथ पड़ी हो प्यारी मैं अति करत निहोरा॥
शसिसम बदन हंसगति वाकी समझ चिन्ह कछु थोरा॥
समाचार सब मोहि सुनावहु नहिं भुलिहों गुन तोरा॥

(बैठ के हाथ जोड़ता हुआ)

नीलकंठ! सांची कहो निज कजरारे नैन।
बन में कहुं बनिता लखी बिरह व्यथित सुख ऐन॥

वाह वाह वाह मेरी बात का उत्तर दिये बिना नाचने लगे यह क्या?

हां ठीक समझ गया आनन्द में मतवाले हो रहे हो क्यों न नाचो॥

इसके हर्ष का और भी कोई कारण है हां हां ठीक जाना मेरी प्यारी के खोजाने से आज यह मोर निश्चिन्त होकर सघन शोभायमान अपने पुच्छ पंख को फैला रहा है क्योंकि फूलों से गुथे हुए प्यारी के वह मनोहर बाल विद्यमान होते जिनका बंधन रतिश्रम से खुल जाता है तो उसके आगे यह मोर किस को मोहित कर सक्ता॥

दूर करो अब ऐसे प्रानी से कुछ न पूंछूगा जो दूसरे के दुख में सुखी हो॥

(चारों ओर देख कर)

Digitized by Google

देखो वह कोयल धूपकाल का अन्त जान मदमाती होके चुप चाप जामुन के पेड़ पर बैठी है पक्षियों में यह जाति बड़ी प्रवीण होती है चलके इस से तो पूछूं ॥

(नृत्य सहित गान)

फिरत बिकल बन महं गजनाथ ॥
विद्याधर कानन महं आयो दुखित धुनत निज माथ ।
इत उत भ्रमत धरत नाहिं धीरज हिय सुख छोड्यो साथ ॥

(नाच सहित गान)

कोकिल भावत तव प्रिय बोल ॥
जो मम प्रिया रुचिर नन्दन बन, मन तरंग बश डोल ।
अंधकार कानन सो घूमत मृदुयुग चरण अमोल ॥
यदि कहुं पड़ी नैन पथ तेरे सांच सांच अब बोल ।
पता सुझाव मोहि प्यारी को भेद सकल विधि खोल ॥

(गाता हुआ नाच के जांघों के बल से खड़ा हुआ)

हे कोयल! तुम्हें कामी जन मदन की दूती कहते हैं और मान अपमान करने के विषय तू प्रवीण और अमोघ अस्त्र है तुझे चाहिये कि उस प्यारी को मेरे पास लावे वा मुझ को उसके निकट पहुंचावे ॥

(सिर हिला २ के आकाश को देखता हुआ)

आपने क्या कहा? हां यह कि तुम सरीखे अनुरागी को भी छोड़ के वह क्यों चली गई ॥

(आगे देखकर) आप सुनिये ॥

क्या वह कुपित था? मैं अपने में तनक भी कोप का कारण नहीं समझता स्त्रियों को जो अपने प्रियतमों में स्वाधीनता होती है वह प्रीति की मन्दता को नहीं देख सक्तीं ॥

Digitized by Google

(चकित होके इधर उधर देखता हुआ)

धन्य बिधाता क्यों न हो देखो यह दूसरे की बात नहीं सुनती और अपने काम में लगी है यह कहावत ठीक है कि बिराने का दुख कैसा ही भारी और ताता हो उसे लोग हलका और शीतल समझते हैं जैसे मुझ बिपति ग्रस्त के बिनय को मेट यह अंधी मदमाती कोकिला पके हुए राज * जम्बु फल को होठ के समान पीने को झुकी जाती है ॥

जो यह प्यारी के समाचार कहने से मुंह छिपाती है तो भी यह मेरी प्रिया के समान मधुर बोलती है इससे इस पर क्रोध नहीं तू आनन्द से बैठ ॥

हे कोयल ! तू अपना चैन कर मैं अब जाता हूं ॥

(परिक्रमा करके इधर उधर देखता हुआ)

आं ! यह क्या ? बन के दाहिने ओर प्यारी के घुंघुरू की सी झनकार सुनाई पड़ती है चलके इसे देखूं तो ॥

(गान)

प्यारी बिरह खिन्नमुख सूखो बहत नैन जल तात ।
दुसह दुःख बश तन गति छिन्ना बाट चलो नहिं जात ॥
तन उदास इत उत दृग ताकत मुख निकसत नहिं बात ।
गज पति व्यथित फिरत बन माहीं तरु बन लखि पछितात ॥

(नेपथ्य में गान)

हथिनी रहित फिरत यह हाथी बहत नैन सोचत बिनसाथी ॥

(करुणा के साथ)

ऐसे कष्ट को धिक्कार है हाय ! हाय !

गगन देखि घन घटा बिसाला मानस हर्षित चले मराला ॥
कूंजत राज हंस गण सोई नहिं यह नूपुर की ध्वनि होई ॥

---

* फलेंदा जामुन ॥

Digitized by Google

(इतना पढ़के उठा)

जो कुछ हो अब इम पक्षियों से जो मान सरोवर को जाया चाहते हैं जब लों न उड़ें चल के प्यारी का बृतान्त पूंछलूं ॥

(पास जाके दोनों जंघा के बल से बैठ कर)

अहो जलपक्षियों के राजा ! सुनो ॥

श्लोक

पश्चात् सरः प्रतिगमिष्यसि मानसं त्वं ।
पाथेय मुत्सृज विसं ग्रहणाय भूयः ॥
मांतावदुद्धर शुचोदयिता प्रवृत्या ।
स्वार्थात् सतांगुरुतरा प्रणयिक्रियैव ॥

अर्थात्

आप मानसरोवर में पीछे से जाइयेगा और पंथ कलेवा के लिये जो भसेण लेने को पानी में जाते हो तनक थंभे रहो पहिले प्यारी का समाचार सुनाके मुझे शोक से उबारलो फिर अपना काम कीजियेगा क्योंकि सज्जन लोग आरतों के काम को स्वारथ से बढ़के समझते हैं ॥

(तिरछी दृष्टि से देखकर)

हे हे! जैसा कि ऊपर की ओर देखता है इसी से इसका यह कहना प्रगट होगया कि हमारा मन चलने में लग रहा है हमने नहीं देखा ॥

(बैठके)

अरे हंसो ! क्यों बात छिपाते हो ॥

(नाच के साथ उठकर)

हे हंस! सरोवर के तट पर जो तूने मेरी प्रिया नहीं देखी तो हे चोर तूने उसकी यह सब मनोहर चाल कहां पाई ॥

Digitized by Google

श्लोक

हंस ! प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हृता।
विभावितैक देशेन देयं यदभि युज्यते ॥

अर्थात्

हे हंस ! तुम मेरी प्यारी को मुझे दे दो इस लिये कि तूने उसकी गति चुराली है और यह न्याय की बात है कि जब अर्थी अपने हरे हुए अर्थ का एक अंश भी साक्षी आदि प्रमाणों से प्रत्यर्थी पर सिद्ध कर देता है तो प्रत्यर्थी को उस अर्थ का सारा अंश देना पड़ता है ॥

(गान)

कहं तुम सीखे गमन ललामा निश्चय दीखे मम प्रिय भामा ॥
मैंने चाल से पहचान लिया ॥

हां तू इस डर से उड़ गया कि यह चोरों का दंडकारी राजा है ॥

अब चलकर और कहीं देखूं ॥

वह अपनी प्यारी के साथ चकवा बैठा है तबलों इसी के पास चलूं ॥

(नेपथ्य में गान)

* दयिता विरहे उन्मत्त मति : ।
भ्रमते विपिने गज राज पति : ॥
रमणीय रवे तरु मर्मरिते ।
शुभ पल्लविते कुसुमे नमिते ॥

गोरोचन कुंकुम समदेहा चक्रबाक सुन सहित सनेहा ॥
कहुं बसन्त खेलत तुम देखा तुरत कहो मेरी शसि लेखा ॥

---

* प्यारी ॥

Digitized by Google

दोहा

तुम रथाङ्ग † के नाम सों हो जग में बिख्यात।
तातें पूछत है रथी यह आरत इक बात॥

हां ऐसा कहो कि यह कौन है हम नहीं जानते तो॥

सुनो पिता मह चन्द्रमा नाना मेरो भानु।
मही उर्व्वशी दुनहु को मुहि प्यारो पति जानु॥

चुप क्यों हो रहे। हां जिस से इसका अपमान हो॥

(जांघों के बल से बैठ के)

क्या अच्छा होता जो अपनी दशा के अनुमान से मेरे दुख को देखते क्योंकि जब कभी सरोवर में कमल पत्र की ओट में तुम्हारी प्यारी का शरीर छप जाता है तो तुम अपने से दूर समझ कर किस प्रकार विरहित होके पुकारते हो बस तुम्हारे स्नेह की तो यह दशा है कि अपनी सहचरी के बिछोह से डरते रहते हो और मैं जो अपनी प्यारी के बिरह में बिकल हूं सो मुझ से एक बात कहने से मुंह छिपाते हो यह तुम्हारी कैसी रीति है?

(बैठ के)

यह सर्वथा मेरे अभाग्य का प्रभाव है॥
अब चलके कहीं दूसरी ओर देखूं॥

(परिक्रमा करके देखता हुआ)

मुहि अवरोधत कमल यह सहित भंवर गुंजार।
जिमि सीसीयुत तासु मुख गहत अधर सुखसार॥

इस स्थान में आकर मुझे पश्चात्ताप मत हो अब इसी कमल पर सोवते हुए भंवरा के साथ प्रीति करूंगा॥

---

† रथाङ्ग नाम चकवा पक्षी का है॥

(नेपथ्य में गान)

बढ़त प्रेम रस क्रम अनुसारी विहरत हंस युवा मदधारी ॥

(चौकोनी बेदी पर हाथ जोड़ के बैठा हुआ)

हे मधुकर ! उस मनोहारिणी का वृत्तान्त वर्णन करो अथवा यह कहो कि हमने उसे नहीं देखा पर यह तुम्हारी बात कौन मानेगा जो तुम उसके मुखारविन्द का उसास न पाते तो तुम्हें इस कमल सूंघने की रुचि कहां से उत्पन्न होती ॥

(परिक्रमा करके पीछे देखता हुआ)

(गान)

करिनी बिरह तप्त करिराजा गंध मत्त मधुकर अति भ्राजा ॥

(बीचो बीच देखकर)

वह हथिनी समेत गजराज कदम्ब के नीचे खड़ा है तब लों इसी के पास चलूं ॥

अथवा यह आगे बढ़ने का समय नहीं है ॥

यह गजेन्द्र अपनी प्यारी हथिनी के शुंडाग्र से दीयमान इस सुगंधित शल्यकी लता को जो वह उजाड़ लाई है उसी खंडित लता के आसव सदृश सुगंधित रस पीने के लिये अभिलाष कर रहा है। जब यह अहार करने में प्रवृत्त हो तो इसके पास चल के पूछूं ॥

(पास जाके)

(गान)

मैं तोहि पूछहुं कहिये गजवर करि प्रहार तुम तोड़त तरुवर ॥
दूर विनिर्जित शशधर कंती कहुं देखी तिय चित्त हरन्ती ॥

(दोनों पांव बढ़ाके)

हे गजराज ! मैं यह पूंछता हूं कि स्त्रियों में चन्द्रकला के समान शोभायमान और जूही के फूलों से गुंथे हुए बालवाली ऐसी युवती जिसका दर्शन दूरही से परम सुखदाई है तुमने कहीं देखी है ? ॥

(हर्ष सहित कान लगाके सुनता हुआ)

अहह ! देखो प्यारी के समागम का आगम जनाने के हेतु यह गजराज मन्द कंठ से गर्जता है धन्य है इसने तो मुझे बड़ी ढाढ़स दी ॥

ऐहो । गजराज ! तुम्हारे विषय हमारी प्रीति बढ़ती जाती है इसलिये कि हमारा तुम्हारा समान धर्म्म है । मुझे लोग राजाओं का अधिराज कहते हैं तैसे तुम गजों के राजा हो और हम तुम दोनों के दान की प्रवृति कहीं रुकी नहीं है और हमारा तुम्हारा दान भी तुल्य है जैसे हम संचित अर्थ को उचित पात्रों में दान करदेते हैं ऐसाही तुम भी अपने वर्द्धित मदगंध को सारे बन में फैलाते हो और जिस प्रकार हमारे स्त्रीरत्न उर्व्वशी उर बसी है ऐसाही यूथ भर में तुम्हारे यह हथिनी है यहां तक तो हमारी तुम्हारी सब बात समान ठहरी परंतु मैं चाहता हूं कि तुम्हें प्यारी का विरह मत हो आप सुख में रहें ॥

(परिक्रमा के अनन्तर देख कर)

आहा । यह सुरभिकंदरा नाम पहाड़ कैसा अच्छा मनोहर है यह स्थान अप्सराओं को बहुत ही प्यारा है चल के देखूं तो कौन जाने जो वह सुन्दरी इसी पहाड़ी भूमि में कहीं मिल जाय ॥

(परिक्रमा के अनन्तर देखकर)

Digitized by Google

यहां कैसा अंधेरा है ऐसा हो कि बिजुली चमके तो देखूं। हाय हाय! मेरे ही पाप का फल है कि ऐसी गंभीर घन-घटा छा रही है और बिजुली का कहीं नाम नहीं, चाहे कुछ हो अब तो बिना इस पहाड़ को देखे नहीं लौटूंगा॥

(गान)

खर खुर खनत धरतिया प्रबल बराह।
निज कारज अति चातुर करत निबाह॥
डोलत चहुं दिशि बन में अधिक निशंक।
धीरज सब ही संभालत नृपति कि रंक।

कहो विशाल नितम्बगिरि! तुम्हारे बनान्तरों में कहीं एक कृशोदरी, सुनितम्बवती, पीवरस्तनी, कटप्रदेशक्षीना, रति के समान मंगलरूपिणी सुन्दरी देख पड़ी है?

क्यों चुप कैसे हो रहे! हां ठीक दूर से नहीं सुनाई पड़ता इसके पास चलके पूछूं॥

(गान)

फटक शिला तल निर्मल निर्झर।
बहु बिधि कुसुम सुशोभित तरुवर॥
किन्नर गावत गीत मनोहर।
तुरत दिखावहु मम तिय महिधर॥

(गान सहित हाथ जोड़के)

सरब अंग की सुन्दरी लसित विविध गुन गाथ।
कहुं तुम मम प्यारी लखी सांच कहो गिरि नाथ॥

(हर्ष सहित प्रतिध्वनि की आहट लेकर)

क्या! बोला कि हमने भली भांति देखा है, कदाचित् ऐसा ही हो, सुनूं तो क्या कहता है॥

Digitized by Google

(खेद से चारों ओर देखकर)

हे हे! यह तो मेरे ही शब्द की प्रतिध्वनि कंदरा से निकलती है॥

(मूर्छित होके फिर बिषाद सहित उठ बैठा)

आहा! थक गया हूं जब लों इसी पहाड़ी नदी के तट पर शीतल तरंग की पौन में बैठूं क्योंकि इस नवीन जल के सोत से बहती हुई नदी को देखकर मुझे बड़ा सुख उत्पन्न होता है यह क्योंकर?

इसके चञ्चल तरङ्ग कटाच्छ के समान दीखते हैं और जो पांती बांधके हंस आदि पच्छी चलते फिरते हैं सो मानों यह अपने चन्द्रहार को खींचके खसकाती है और इस में उठा हुआ फेन ऐसा सूचित हो रहा है कि मानों यह अपने छूटे हुए ढीले वस्त्र को रमन पै रिसा के समेटती जाती है और ज्यों ज्यों यह टेढ़ी गति से इधर उधर बहती है त्यों त्यों मुझे निश्चय होता जाता है कि मेरे अपराध को जी में बार बार सोच के रूठी हुई वही उर्व्वशी नदी बन गई है॥

अब जहां तक होसके इसे प्रसन्न करूं॥

सुनके बिनती तन क्रोध हरो करिके करुना निज रूप धरो।
जल बाहनि भेष सुहावनि है अलिगुंजनिसों मन भावनि है॥
उड़गे लखिके सब पच्छिगना पिय तीर पड़ो तव खिन्नमना।

(गान)

ऐसो बहत पौन पुरवाई॥
चलत तरंग बेग सों ऊपर मानहु बांह उठाई।
नाचत जल निधि मेघ अंग सो ललित मनोहरताई॥
हंस शंख चकवा कुंकुम सम रुचि आभरण बनाई।

Digitized by Google

मकर ग्राह गज कृष्ण कमल मिलि चित्र चुनरि पहिनाई ॥
चल अघात तट में जो लागत सो करताल घुमाई ।
दश दिशि घेर लियो नव बादर परत न गगन जनाई ॥

(जांघों के बल से बैठकर)

प्रिय भाषिणि तव प्रीति में बंधो रहत मम चेत।
बिनु अघ ऐसे दास को कहो तजे केहि हेत ॥

चुप क्यों रही ! अथवा यह सच मुच नदी है, उर्व्वशी नहीं है क्योंकि जो वह होती तो पुरूरवा को छोड़के समुद्र के मिलने को कभी न जाती, जो निराश न हो धीरज धरै तो अन्त में भला होता है अब ऐसा हो कि फिर उसी स्थान में चलके ढूंढूं जहां वह अंतर्ध्यान हुई है ॥

(परिक्रमा करके देखता हुआ)

तब लों इस बैठे हुए हरिन से प्यारी का समाचार पूंछूं ॥

अभिनव कलित कली चटकारी ।
फूले फूल भवर झनकारी ॥
कोकिल कूजत बैन मनोहर ।
नन्दन बिपिन सकल विधि सुन्दर ॥
बिचरत नाग राज ऐरावत * ।
बिहर बिकल प्यारी नहि पावत ॥

(जांघ के बल से बैठ के)

इस काले हरिण की कैसी अच्छी छबि दिखाती है कि मानों बन की शोभा ने नये नये शस्यों के देखने के लिये अपना कटाक्ष गिरा दिया है ॥

(शुभ सगुन देख के)

---

* ऐरावत के मिस से राजा अपनी दशा का वर्णन करता है ॥

Digitized by Google

देखो बसेरे में जाती हुई हरिनी को मृग छौना ने थन पीने के लिये रोक रक्खा है तिसे यह काला हरिण कैसा इक-टक लगा के देख रहा है ॥

(गान)

सघन जघना अलस गमना तुङ्ग अरु कुचपीन ॥ अमर पुरवर सुन्दरी मृगलोचनी तनु छीन ॥ विपिन निर्मल बीच देख्यो भ्रमत जिमि जल मीन ॥ कहि संदेश उवारु मुहिको विरह सागर लीन ॥

(आगे बढ़के हाथ जोड़े हुए)

अहो ! हरिणी के पति ! कहो इस बन में कहीं प्यारी को देखा है उसके लक्षण भी मैं कहता हूं सो सुनों जैसे तुम्हारी प्यारी हरिणी बिशाल नेत्रों से देखती है ऐसी ही उसकी भी चितवनि है ॥

(देखकर)

क्यों मेरी बात का अनादर करके अपनी प्यारी की ओर मुख किये खड़े हो, तुम क्या करो जब बिधाता प्रतिकूल होती है तो सब ठौर अपमान ही मिलता है, अब चलके कहीं और देखूं ॥

(परिक्रमा के अनन्तर देखके)

हो हो ! जिस बाट होके वह गई है उसका लक्षण मैंने देख लिया देखो यह बरसाती लाल कदम्ब का गुच्छा जिसकी बहुत सी कलियां अधखिली रह गई हैं इसे तोड़ के प्यारी ने अपने सिर को भूषित किया है ॥

(परिक्रमा के पीछे देखकर)

यह जो अत्यंत लाल रंग का दीखता है सो नहीं जान पड़ता क्या है मानों पत्थर तोड़ के उसके बीच से निकाला गया है ॥ यह सिंह के मारे हुए हाथी के मांस का टुकड़ा नहीं है

Digitized by Google

क्योंकि इसके ललित प्रकाश की ज्योति चारों ओर फैली हुई है जो कहूं कि आग का अंगारा है सो नहीं हो सक्ता क्योंकि अभी पानी बरसा है और इसकी लौर ज्यों की त्यों बनी है, हे रक्त-अशोक * फूल के लाल गुच्छे ! यह तेरे ही समान रंग का मणि है जिसके उठाने के लिये मानें सूरज ने अपनी किरन लटका दी है ॥

जो कुछ हो अब इसे लेलूं ॥

(थिरकनि से मणि का ग्रहण) (गान)

बिरहिन बिरह बिकल गजपति है ।
नयन उभय जल धार बहति है ॥
चहुं दिशि भ्रमत फिरत बन बन में ।
खिन्न बदन दुःखित तन मन में ॥

(मणिको उठाय आपही आप)

श्लोक

मन्दार पुष्पै रधि वासितायां यस्याः शिखायां मय मर्पणीय ।
सैव प्रिया सम्प्रति दुर्लभा मे मेवेन मश्रूप हतं करोमि ॥

अर्थात्

पारिजात के फूलों से सुवासित की हुई जिस की चोटी में यह मणि अर्पण करने के योग्य था जब इस समय वही दुर्लभ है तो मैं इसे आंसुओं से भिगोकर क्यों बिगाड़ूं ॥

(मणि को फेंकता हुआ)

(नेपथ्य में यह शब्द हुआ) सुत ! इसे उठालो उठालो शैलसुता के चरण राग से उत्पन्न संगममणि यही है इसके धारण करने से बहुत शीघ्र प्रियजन का मिलाप होता है ॥

---

* लालरंग का अशोक वर्षाकाल में फूलता है ॥

Digitized by Google

राजा । (ऊपर की ओर देखकर) क्या! कौन मुझे सिखाता है ? (देखकर) क्या यह सिक्षा भगवान मृग राजधारी की है ? हां धन्य, हे भगवान ! आपके अनुग्रह और उपदेश से कृतार्थ हुआ ॥

(मणि को हाथ में लेकर)

अहो संगम मणि ! सुनो आज मैं उस कृशोदरी से रहित हो रहा हूं यदि तुम्हारे प्रभाव से प्यारी का समागम हो-जायगा तो आप को इस प्रकार अपना शिखामणि बनाऊंगा जैसे बालचन्द्रमा को महादेव ॥

(परिक्रमा करके देखता हुआ)

सो क्या बात है ? कि यह लता यद्यपि फूलों से रहित है परंतु इसके देखने से मुझे सुख मिलता है वा यह स्थान ही ऐसा है कि यहां मेरा मन रमित होता है ॥

यह पतली लता जो बादरों के जल से भीग गई है सो मानों इस ने आंसुओं से अपने ललित होठों को धोया है अपना ऋतु आये बिना फूलों से रहित दिखाती है तो इस से यह जान पड़ता है कि इस ने अपने आभरणों को उतार डाला है जो इस पर भौंरों के गुंजार का शब्द नहीं होता तो मानों चिन्ता में डूबी हुई चुप चाप खड़ी है इन सब लक्षणों से जान पड़ता है कि वही उर्व्वशी मुझ पांव पड़ते को झिझकार क्रोध के मारे लता हो गई है ॥

जब लों इस प्यारी के अनुरूप लता को अनुराग सहित भेंट लूं ॥ हे लते ! देख मेरा हृदय सूख गया है जो कदाचित् दैव योग से फिर तुझे पाऊंगा तो बन में भटकता न फिरूंगा और उस कंकालिनी को फिर यहां कभी न लाऊंगा ॥

Digitized by Google

राजा। (आंख मूंदे लता को भेंट के हाथों से टटोलता और स्पर्श का अनुमान करता हुआ)

हाय! उर्व्वशी मानों तेरे अंगस्पर्श से मेरा हृदय उमग आया है फिर भी विश्वास नहीं पड़ता। क्योंकि जिस वस्तु को प्रथम देखकर निश्चय करता हूं कि यह उर्व्वशी है सो एकही क्षण में पलट के दूसरी वस्तु होजाती है इस कारण जो मुझे इस समय स्पर्श का सुख मिला है तो बस ऐसा ही चिपटा रहूंगा एका एक आंख न खोलूंगा॥

(तनक आंख खोलके) क्या सच मुच उर्व्वशी है

(मूर्छित होके गिरता हुआ)

उर्व्वशी। महाराज! सावधान, सावधान॥

राजा। (सचेत होकर) अयि! प्यारी अब तो जीव बचा॥

तव वियोग अंधियार बिच डूबत रह बिन जीव।
अहो भाग्य तू चेतसी मिल मुहि कियो सजीव॥

उर्व्वशी। महाराज! मैं क्रोध के वश होकर अन्य अवस्था को प्राप्त हो गई थी इस मेरे अपराध को आप क्षमा कीजिये॥

राजा। तुम्हारे देखने ही से हमारा तन मन प्रफुल्लित हो गया तुम हमारी प्रसन्नता का सोच मत करो। अब यह बतलाओ कि इतने समय तक मुझ से अलग होके क्योंकर ठहरी रही?

(गान)

मोर परेवा हंस रथंगा*।
अलिगज पर्व्वत सरित कुरंगा॥
तेरे कारण विपिन भ्रमंतं।
कोउ नहिं पूछ्यो मोहि रुदंतं॥

---

* चकवा

उर्व्वशी। महाराज ! यह सब वृत्तान्त में अन्तष्करण से देखती रही हूं ॥

राजा। प्यारी ! मैं नहीं जानता कैसा अन्तष्करण ?

उर्व्वशी। सुनिये महाराज ! जिस समय स्वामिकार्त्तिक के सदैव के लिये इस पुण्यमय स्थान गंधमादन के अन्त भाग में कुमार ब्रत ग्रहण किया है तभी उन्हों ने यह नियम ठहरा दिया है ॥

राजा। कैसा नियम ?

उर्व्वशी। जो कोई स्त्री इस स्थान में आवेगी वह लता भाव को प्राप्त हो जायगी और गौरी चरण राग से उत्पन्न मणि को छोड़ और किसी प्रकार अपने पूर्वरूप को न पावेगी सदैव लता बनी रहेगी सो मैं गुरू * के शाप से मोहित होकर। देवता के नियम को भूल ऐसे कुमार बन में घुस पड़ी जहां कन्या जनों को न जाना चाहिये, सो प्रवेश करते ही मेरा रूप लता के समान हो गया ॥

राजा। हे प्यारी ! जो तुमने कहा सो ठीक है ॥

सोवत हू जानत रही तू जिमि गत परदेश।
यहां इकल्ली क्यों सह्यो इतना बिरह कलेश ॥

तुमने समागम का जैसा हेतु वर्णन किया सो यही मणि है इसी के प्रभाव से हमारा तुम्हारा संगम हुआ है ॥

(मणि को दिखाता हुआ)

उर्व्वशी। आहा ! क्या यह अपूर्व संगम मणि है जिसके होते हुए महाराज के आलिंगन से मैं अपनी सचेत दशा को प्राप्त हो गई ॥

* भरतमुनि

राजा। (उर्व्वशी के सिर पर मणि रख के) देखो ललाट पर स्थापित मणि की लाली प्रभा तुम्हारे मुख को ऐसी छवि दे रही है जैसे सूरज की किरण लाल कमलों को शोभित करती है॥

उर्व्वशी। हे प्यारे प्रजापाल! हम और आप दोनों को प्रतिष्ठानपुर * छोड़े बहुत दिन हो गये कदाचित् प्रजा दुख पावती हो अब आओ वहीं चलें॥

राजा। प्यारी! जैसा आप कहें (दोनों उठे)

उर्व्वशी। फिर अब आप किस प्रकार जाया चाहते हैं?

राजा। श्लोक

अचिर प्रभाविलसितैः पताकिना सुरकार्मुकाभि चित्रशोभिना
गमितेन खेल गमने विमानतां नय मानवेन वसतिं पयोमुचा॥

अर्थात्

† हे सखेलगमने! चमकती हुई बिजुली का प्रकाशमान पताका और इन्द्र धनुष रूपी चित्र रचना से शोभायमान नये बादरों को विमान बनाय अपनी विलास लीला गति से मुझे राजधानी में ले चल॥

(नेपथ्य में गान)

सह चरि मिलन प्रेम पुलकित तन लहि अभिलषित बिमाना
प्रिया सहित विहरत नभ मण्डल हंस युबा हर्षाना॥

(राजा और उर्व्वशी बाहर निकल गये)

(यहां चौथा अङ्क समाप्त हुआ)

---

* प्रयाग के पास गंगा के उत्तर तट पर जिसको अब झूंसी कहते हैं॥

† खेल के साथ चलनेवाली॥

Digitized by Google

पांचवां अङ्क

(हर्ष सहित विदूषक आया)

विदूषक। हो हो बड़ी बात हुई अब भाग खुला बहुत दिनों पर श्रीमहाराजा उर्व्वशी समेत नन्दन आदि बनों में बिहरते बिहरते अब नगर में पधारे हैं इस समय धर्माशन पर विराजमान होके प्रजाओं को सब प्रकार आनन्द दे रहे हैं॥

अब इन को केवल एक सन्तान की लालसा रहगई और किसी बात का सोच नहीं रहा, आज कौन तिथि है ? श्रीमहाराज महारानी समेत गंगा यमुना के संगम में स्नान करके राज मंदिर की ओर गये हैं जब तक कामिनी गण मिल के गंध पुष्प आदि से अलंकृत करें तब लों मैं भी वहीं जाके उनका साथी बनूं॥

(नेपथ्य में) हे हे ! वह प्रकाश मान मणि जिसको महाराज ने अप्सरा के विरह निवृत्त होने पर अपने शिर मुकुट का रत्न बनाया था मांस का टुकड़ा जान गीध पक्षी लिये उड़ा जाता है॥

विदूषक। (सुनकर) बहुत बुरा हुआ ! यह संगम नाम चूड़ामणि हमारे मित्र को बहुत प्यारा था इसके लिये उन्होंने बड़ा यत्न किया है देखो नेपथ्य अभी पूरा नहीं हुआ आप † आसन से उठ खड़े हुए तो मैं भी चलके उनके पास खड़ा हूं॥

(प्रवेशक * निकल गया)

---

† राजा

* नीच पात्र जो धीरे २ बात करता है॥

Digitized by Google

(इसके अनन्तर राजा और सूत और दो रेचक और परिजन आए)

राजा। * रेचक! रेचक! कहो?

विहंग चोर वह कहं गयो निज वध मन अनुसारि।
रखवाले के गेह में चोरी कियो प्रचारि॥

रेचक। हां हां प्रभु! यह पक्षी सुवर्ण तार से गुथे हुए मणि को चोंच से पकड़े उड़ता हुआ ऐसा जान पड़ता है कि मानों मणि के रंग से आकाश को रंगता फिरता है॥

राजा। (देखके) हां वह॥

सोन तार गूथ्यो सुमणि मुख में लटकत जात।
नभ महं भवत अंगार सम दुति बनि बलय विभात॥

अब कहिये इस समय क्या किया जाय?

विदूषक। बस अब दया का कुछ काम नहीं यह अपराधी दंड ही के योग्य है॥

राजा। आपने ठीक कहा धनुष धनुष॥

परिजन। जो प्रभु की आज्ञा॥

(इतना कहिके परिजन धनुष के लिये बाहर निकल गया)

राजा। वह अधम पक्षी अब नहीं दीखता॥

विदूषक। इधर इधर दक्षिण की ओर वह गीध गया है॥

राजा। (देखकर) इस समय कैसी छवि हो रही है!

जनु अशोक गुच्छक सुमणि पल्लव ललित प्रकाश।
पहिरावत दिशि † को मनहु करणफूल खग दास॥

(हाथ में धनुर्बाण लिये हुए यवनी का प्रवेश)

यवनी। महाराज! यह बाण समेत धनुष॥

---

* रेचक एक किरात का नाम है॥

† मानों गृद्ध रूपी दास दिशा रूपी स्त्री के कान में करन फूल पहनाता है॥

Digitized by Google

राजा। अब धनुष से क्या होगा जहां तक बाण की गतिरही वह पक्षी उस से बहुत दूर निकल गया देखो अब भी वह मणि आकाश मंडल में ऐसा चमकता है जैसे रात को घन घटा के बीच मंगल ग्रह ॥

हे आर्यतालव्य ! † ॥

कंचुकी। महाराज की जो आज्ञा हो ॥

राजा। मेरी ओर से तुम नगर के सब निवासियों से कह दो कि आज संध्या के समय जिस वृक्ष पर यह अधम पक्षी बसेरा ले इसे ढूंढैं ॥

कंचुकी। जैसी प्रभु की आज्ञा (बाहर निकल गया)

विदूषक। अब आप विश्राम कीजिये वह मणि का चोर पक्षी जहां कहीं गया हो आपके राज्य से बाहर तो जाही नहीं सक्ता तो क्योंकर बचेगा ?

(दोनों बैठ गए)

राजा। हे मित्र ! मैं यह समझकर उस मणि के निमित्त यत्न नहीं करता कि वह अनमोल रत्न है वरन मुझे इस बात का सोच है कि इसी संगम मणि के प्रभाव से प्यारी का समागम हुआ ॥

(कंचुकी आया)

कंचुकी। जय जय महाराज ! ॥

हे प्रभु आपके क्रोध ने इस बाण का रूप धारण करके उस वध योग्य अधम पक्षी के तन को छिन्न भिन्न करके आकाश से नीचे गिरा दिया उसने जैसा अपराध किया वैसा उचित फल पाया ॥

---

† तालव्य कंचुकी का नाम है ॥

Digitized by Google

८६ (सब लोग विस्मय करते हुए)

कंचुकी। यह मणि धोके भली भांत शुद्ध किया गया है अब किसको दिया जाय ?॥

राजा। रैचक ! तुम जाओ राज्य कोष के पेटक में इसे रख दो॥

रैचक। जो प्रभु की आज्ञा॥

(मणि लेकर बाहर निकल गया)

राजा। (तालव्य से) भोआर्य ! आप जानते हैं यह किसका बाण है ?॥

कंचुकी। इस में किसी का नाम तो अङ्कित है परंतु वे अक्षर मेरी आंखों से भली भांत दिखाई नहीं देते॥

राजा। अच्छा लाओ मैं तो देखूं॥

विदूषक। आप क्या बिचार रहे हैं।?

राजा। बाण प्रहारी के नामाक्षर अब सुन लो॥

विदूषक। पढ़िये मैं एकाग्र मन होके सुनता हूं॥

राजा। (पढ़ता हुआ)

श्लोक

उर्व्वशी सम्भव स्याय मैलसूनो र्धनुष्मत :।
कुमारस्यायुषो बाण स्संहर्ता द्विषदायुषाम्॥

अर्थात्

उर्व्वशी के गर्भ से उत्पन्न ऐलनाम पुरूरवा के राजकुमार के आयु नामी धनुषधारी का यह बाण शत्रुओं के जीवन का विनाशकारी है॥

विदूषक। आज अहो भाग्य हुआ आप सन्तान करके वृद्धि को प्राप्त हुए॥

Digitized by Google

राजा। यह कैसे हुआ? देवताओं के यज्ञ दर्शन समय को छोड़ मैं कभी उर्व्वशी से अलग नहीं हुआ और बहुधा गर्भवती स्त्रियों को किसी किसी पदार्थ के भक्षण की लालसा होती है सो बात देखने में नहीं आई तो फिर क्योंकर सन्तान की उत्पत्ति हुई? परंतु मुझे इतनी सुध है कि कुछ दिनों तक स्तनों के अग्र भाग में थोड़ी श्यामता और मुख की कान्ति लवली फल † के समान पांडु वर्ण हो गई थी और उसका शरीर ऐसा कृश हो गया रहा कि हाथ का विजायट खसक खसक पड़ता था॥

विदूषक। महाराज! जब उर्व्वशी मानुषी नहीं है तो उसके साथ मानुषी धर्म की सम्भावना मत कीजिये देवताओं के चरित्र उनके प्रभाव से छिपे रहते हैं॥

राजा। ऐसा ही हो जैसा आप कहते हैं परंतु पुत्र के छिपाने में उसने क्या हेत समझा है?

विदूषक। यही कि मुझे बुड्ढी समझके महाराज छोड़ देंगे।

राजा। यह तो तुम ठट्ठा करते हो, तत्व की बात सोचो॥

विदूषक। भला देवताओं के भेद की बात कौन समझ सक्ता है॥

(कंचुकी आया)

कंचुकी। जय जय महाराज! च्यबन मुनि के आश्रम से कोई भृगुबंशोद्भव तापसी एक कुमार को साथ लिये हुए आई है सो प्रभु को देखा चाहती है॥

राजा। दोनों को आदर सहित अभी बुलालाओ॥

† हरफ़ा रेवड़ी॥

Digitized by Google

(कंचुकी तापसी और कुमार को साथ लेके आया)

विदूषक। यह निश्चय कर इसी का कुमार है जान पड़ता है कि इसी का नाम उस गृध्रवेधी बाण में अंकित है और इसकी अनुहार आप से बहुत मिलती है॥

राजा। मित्र तुम ठीक कहते हो इस पर दृष्टि पड़ते ही मेरी आंखें में हर्ष का जल भरता और हृदय सनेह रस से सिंचकर उमगता आता है और अंगों की कपकपी से धीरज छटता जाता है और मेरा जी चाहता है कि इसे दबा दबा के अपने अंगों से मिलाऊं॥

कंचुकी। आप यहां बैठ जाइये॥

(तापसी और कुमार दोनें यथोचित बैठ गए)

राजा। (उठके) भगवति! आप को प्रणाम करता हूं॥

तापसी। महाराज! चन्द्रबंश का बंशधर होओ॥

(आप ही आप) देखो यह बिना बतलाये राजऋषि के साथ अपना औरस सम्बन्ध † जान गया॥

(प्रगट) बाछा! अपने बड़े को प्रणाम करो॥

(कुमार आंखें में आंसू भरे हुए हाथ जोड़ के प्रणाम करता है)

राजा। बाछा! आयुष्मान होओ॥

कुमार। (स्पर्श का अनुभव करके आप ही आप)

जब इतना ही सुनकर कि यह हमारे पिता और मैं इनका पुत्र हूं ऐसा अपूर्व प्रेम हुआ तो मैं नहीं जानता कि जो लड़के अपने मा बाप की गोद में रहकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं उनको प्रेम कैसा होता होगा॥

---

† पिता से पुत्र होने का सम्बन्ध-औरसपुत्र-पुत्राधिकार पुत्र-१२ प्रकार के पुत्रों में से औरस पुत्र उत्तम है॥

Digitized by Google

राजा। भगवति! मैं आपके आगमन का प्रयोजन सुना चाहता हूं।

तापसी। महाराज! सुनिये इस चिरंजीव कुमार को जन्मतेही कुछ कारण देख उर्व्वशी ने मेरे हाथ में सौंप दिया था सो कुलीन क्षत्रियों का जैसा कुछ जात कर्म आदि विहित संस्कार होता है सो सब च्यवन मुनि ने विधिपूर्वक किया है और संपूर्ण विद्या पढ़ा के दक्ष कर दिया और अब यह धनुर्वेद पढ़के प्रवीन हो गया है॥

राजा। निज नाथ के साथ रहा तभी तो यथोचित प्रतिपालन हुआ॥

तापसी। आज फूल फल लकड़ी कुश लेने को ऋषिकुमारों के साथ बन में गया रहा सो वहां इसने ऋषि आश्रम के विरुद्ध काम किया॥

विदूषक। वह कैसा?

तापसी। एक गिद्ध मांस का टुकड़ा लिये हुए वृक्ष की टेनी पर बैठा चाहता था उसे इसने बाण से मार के गिरा दिया॥

राजा। फिर क्या हुआ?

तापसी। जब यह वृत्तान्त मुनि जी को मिला तब उन्हों ने मुझे आज्ञा दी कि इसे उर्व्वशी के हाथ में सौंप आओ तिस से उर्व्वशी को देखा चाहती हूं॥

राजा। आप इस पर बिराजिये॥

(दोनों आसन पर बैठ गये)

आर्यतालव्य। आप जाके उर्व्वशी से कह दें॥

कंचुकी। जो प्रभु की आज्ञा॥

(बाहर निकल गया)

Digitized by Google

राजा। दादू! यहां आओ अपने अंग स्पर्श से मेरे सर्वांग को हर्षित करो॥

दोहा

परसि तनय तमको सकल अंग अंग हर्षाय।
चन्द्र कान्त मणि मुदित जिमि चन्द्र किरिण को पाय॥

तापसी। दादू जाओ पिता को आनन्द दो॥

(कुमार राजा के पास गया)

राजा। (अंग में लगाके) बेठा)! हमारे इस परम प्यारे वृद्ध ब्राह्मण को निडर होके प्रणाम करो॥

विदूषक। मुझ्से क्यों डरेंगे क्या मुनि के आश्रम में इन्होंने बूढ़े बंदरों को नहीं देखा?॥

कुमार। (मुसक्याके) चचा! पायलागन॥

विदूषक। कल्याण हो बेटा बढ़ो बढ़ो॥

(कंचुकी के साथ उर्व्वशी आई)

कंचुकी। आप इधर होके इधर होके॥

उर्व्वशी। (भीतर जाके) यह सोने की चौकी पर कौन बैठा है जिसके बालों को महाराज अपने हाथों से संवारते हैं (तापसी को देखकर) आहा! यह तो सत्यवती समेत मेरा पुत्र आयु है अब तो बहुत बड़ा हो गया है॥

राजा। बाछा! यह तुम्हारी माता तुम्हारे देखने में मगन हो गई है देखो मारे सनेह के दोनों स्तनों में इतना दूध भर आया है कि सारा अंचल भीगा जाता है॥

तापसी। दादू! आओ अपनी माकी गोद में बैठो॥

Digitized by Google

(तापसी कुमार को उर्व्वशी के पास ले गई)

उर्व्वशी । ऐया ! पांव पड़ती हूं ॥

तापसी । बेटी ! अपने पिया की परम प्यारी बनी रहो ॥

कुमार । अम्मा पायलागन ॥

उर्व्वशी । बेटा ! पिता की सेवा में तत्पर होके बढ़ो ॥

(राजा से) जयतु जयतु महाराजः ॥

राजा । भो पुत्रवति ! अच्छा हुआ आप आई आओ यहां बैठो ॥

उर्व्वशी । आर्य्यगण ! आप सब जने बैठ जावें ॥

(सब लोग बैठ गये)

तापसी । हे उर्व्वशी ! इस तुम्हारी धरोहर को मैं महाराज के सन्मुख तुम्हारे हाथ में सौंपती हूं इस समय यह संपूर्ण बिद्या को पढ़कर वाण कवच धारण में समर्थ होगया है अब मैं चाहती हूं कि तुम मुझे बिदा करो क्योंकि अधिक ठहरने से मेरे आश्रम का धर्म बिगड़ता है ॥

उर्व्वशी । आप की जो इच्छा, बहुत दिन होगये दर्शन नहीं मिला इस कारण आप के विरह की उत्कंठा लग रही है छोड़ने को जी नहीं चाहता परंतु जब आप के धर्म पथ में हानि हो तो मैं क्योंकर रोक सक्ती हूं बहुत अच्छा जाइये जिस से फिर दर्शन मिले ॥

राजा । भो भगवती ! श्री स्वामी च्यवन जी से मेरा प्रणाम कहि देना ॥

तापसी । बहुत अच्छा ॥

कुमार । ऐया ! जो तुम सचमुच चलती हो ? तो मुझे भी साथा लिये चलो ॥

राजा। पहिले आश्रम * के धर्म का आचरण तुमने वहां किया अब दूसरे आश्रम का समय है सो उसका अभ्यास यहीं करना चाहिये॥

तापसी। दादू! अपने बड़े के वचन का प्रतिपालन करो॥

कुमार। अच्छा जो मोर पक्षी मेरी गोद में खुजलाने का सुख पाके सोजाता रहा है अब उसके पंख बहुत बढ़ गये हैं सो उस नील कंठ मोर को मेरे पास भेज दीजियेगा॥

तापसी। बहुत अच्छा भेजदूंगी॥

उर्व्वशी। ऐया! आप को प्रणाम करती हूं॥

राजा। भगवति! आप को प्रणाम करता हूं॥

तापसी। सब का भला हो॥

(तापसी चली गई)

राजा। अयि! सुन्दरि। आज मैं इस तेरे पुत्र को पाके सब पुत्रवानों में श्रेष्ठ हुआ जैसे पैालोमी से उत्पन्न जयंत नामी पुत्र को पाके राजा इन्द्र सब में अग्रगण्य है॥

(उर्व्वशी सुध करके रोती है)

विदूषक। सो तो सब ठीक पर अब यह क्या? जो आप आंखों में आंसू भर के सुसक रही हैं॥

राजा। हे सुन्दरि! वंश रक्षक के समागम से जो मुझे परम आनन्द प्राप्त हुआ तो इस समय आप क्यों रोती हैं दोनों विशाल स्तनों पर जो मोती के समान आंसू की बूंद ढलती हैं सो इस प्रकार मुक्तावली हार का बनना ऐसा व्यर्थ है जैसे काव्य का पुनरुक्ति दोष॥

---

* पहिला आश्रम ब्रह्मचर्य दूसरा गृहस्थी॥

Digitized by Google

उर्व्वशी। सुनिये महाराज! प्रथम पुत्रदर्शन के आनन्द में भूली रही हूं अब इस समय इन्द्र का नाम सुन कर मुझे उस अवधि की सुध आगई है॥

राजा। सो कहो?

उर्व्वशी। पूर्व काल में जब मेरा मन आप के विषय लग गया और मैं भरत मुनि के शाप से मोहित हो गई उस समय महेन्द्र ने मेरे लिये एक अवधि ठहरा दी थी॥

राजा। अवधि कैसी?

उर्व्वशी। इन्द्र ने यह कहा था कि जब हमारे मित्र राजऋषि तुम्हारे पेट से उत्पन्न पुत्र का मुख देख लें तो तुम फिर हमारे पास चली आना सो जब पुत्र का जन्म हुआ तो मैंने आप के वियोग का भय मान चिरकाल तक समागम को हित जान श्रीमान् च्यवन मुनि के आश्रम में अपने पुत्र को सत्यवती माई के हाथ में सोंप दिया सो आज पिता के अराधन में समर्थ इस दीर्घायु पुत्र को आप के सन्निकट देख लिया अब बस महाराज के साथ मेरा संयोग इतना ही था॥

(सब लोगें का बिषाद और राजा का मोह)

सब लोग। आः! महाराज सावधान सावधान यह क्या यह क्या?

कंचुकी। महाराज! धीरज धरिये धीरज बस बस यह क्या?

विदूषक। सब बिगड़ा सब बिगड़ा॥

राजा। (सावधान होके) सुख में विघ्न डालना यह दैव की विचित्र लीला है हे सुन्दरि! देखो जब आज पुत्र पाके मेरे चित्त को समाधानी हुई तो तुम्हारे वियोग का दुख आन खड़ा हुआ यह मेरी ऐसी गति हुई जैसे दोंगरा पड़ने से वृक्षों

Digitized by Google

को धूप कालिकताप दूर होते ही उन पर बिजुली पड़े ॥

विदूषक। यह सोई अर्थ है जो अनर्थ को उत्पन्न करै मैं सोचता हूं कि आप को भी वही काम करना चाहिये जिस से देवराज प्रसन्न हों ॥

उर्व्वशी। हाय कष्ट मैं बड़ी अभागिनी ठहरी कि ऐसे विनीत पुत्र के समागम होने पर प्रार्थना करते हुए महाराज को छोड़ कर उनकी इच्छा के प्रति कूल मैं स्वर्ग जाया चाहती हूं ॥

राजा। सुन्दरि! ऐसी बात मत कहो परबश लोग अपने प्रिय कामों को नहीं कर सक्ते और बियोग उनको सहज में पहुंचा रहता है इस लिये तुम अपने प्रभु इन्द्र की आज्ञा का पालन करो मैं भी तुम्हारे पुत्र को राज्य का भार सोंप उन बनों में जा बसूंगा जहां मृगाओं के झुंड चरते हैं ॥

कुमार। महाराज! जिस धुरी के बोझ को बड़े बड़े बलवान बर्द्ध खींचते हैं वह एक नवसिख बछड़े के कंधे पर रखना उचित नहीं है ॥

राजा। हे बत्स! ऐसा मत कहो जैसे गंधद्विप * हाथी का पट्ठा चाहे थोड़ी अवस्था का हो परंतु वह दूसरे प्रकार के हाथियों को हटा देता है और काले सांप का बच्चा कितना ही छोटा हो पर उसके विष का बड़ा उग्र वेग होता है ऐसा ही राजा लोग बालपन से पृथ्वी की रक्षा में समर्थ होते हैं क्योंकि जिस जाति का जो सहज गुण है वह स्वभाव ही से उपजता है इस में अवस्था का कुछ नियम नहीं है ॥

हे आर्यतालव्य!

---

* जिस हाथी की गंध सूंघ के सब हाथी भाग जाते हैं ऐसा हाथी राजाओं के लिये बिजयकारी होता है ॥

कंचुकी। जो महाराज की आज्ञा हो॥

राजा। मेरा वचन तुम जाके पर्व्वत मंत्री से कह दो कि अयुष्मान राजकुमार के राज्याभिषेक की सामग्री इकट्ठा करे॥

(कंचुकी दुःखित होके निकला सब लोग आंखों की सैन मारते हैं)

राजा। (आकाश की ओर देखकर)

अकस्मात् यह बिजुली क्यों चमकती है॥

(भली भांति देखकर)

हो हो! यह तो महामुनि नारदजी आते हैं॥

श्लोक

गोरोचना निकर्षपिङ्ग जटा कलापः।
संलक्ष्यते शसिकला मल वीत सूचः॥
मुक्तागुणातिशय सम्भृत मंडल श्री।
हेम प्ररोह इव जङ्गम कल्प वृक्षः॥

अर्थात्

जटा का समूह ऐसा लक्षित होता है जैसे कसौटी पर गोरोचन की रेखा और चन्द्रकला के समान निर्मल जनेऊ ऐसा शोभित होता है जैसे प्रकाशमान मोती का हार इनके पीले पीले रंग के बाल सुवर्ण की डालियां वा प्ररोह की भांति चमकते हैं इस से यह मुनि ऐसे भाषते हैं मानों चलायमान कल्प वृक्ष चला आवता है॥

तब लों अर्घ लाओ अर्घ लाओ॥

उर्व्वशी। यह अर्घ पात्र विद्यमान है॥

(देव ऋषि नारद का प्रवेश)

Digitized by Google

नारद । विजयतां विजयतां मध्यम लोकपाल: * ॥

राजा । भगवन् ! आप को प्रणाम करता हूं

उर्व्वशी । गुरूजी ! पाय लागन ॥

नारद । दोनों प्राणी आनन्द में बिछोह रहित रहो ॥

राजा । (आपस में) जो यह आशीर्बाद ऐसा ही हो ॥
(प्रगट) यह उर्व्वशी से उत्पन्न पुत्र आप को प्रणाम करता है ॥

नारद । यह दीर्घ आयुर्बल से युक्त हो ॥

राजा । इस आसन पर आप विराजिये ॥

(सब बैठ गये)

राजा । (विनय सहित) भो ऋषि राज ! आप के शुभ आगमन का प्रयोजन सुना चाहता हूं ॥

नारद । महाराज ! महेन्द्र का संदेश सुनिये ॥

राजा । कहिये मेरा मन एकाग्र है ॥

नारद । जब देवराज ने अपने योग बल से देखा कि आप निश्चय बन में जाया चाहते हैं तब उन्होंने संदेश भेजा है ॥

राजा । उनकी क्या आज्ञा है ?

नारद । त्रिकालदर्शी ज्योर्त्तिषियों ने निश्चय किया है कि थोड़े ही दिनों में देवासुर संग्राम हुआ चाहता है और आप हमारे परम सहायक हैं इस लिये अभी आप को हथियार रख के मुनि का आचरण करना उचित नहीं और यह उर्व्वशी जिसके कारण विराग बुद्धि उत्पन्न हुई जीवन पर्य्यन्त एक साथ आप की धर्म्म चारिणी रहेगी ॥

उर्व्वशी । आहा क्या मेरे कलेजे की फांस निकल गई है ॥

राजा । प्रभु महेन्द्र के परम अनुग्रह से मैं कृतार्थ हुआ ॥

---

* पृथ्वी के राजा ॥

Digitized by Google

नारद। ठीक कहते हो जैसे रात्रि में सूर्य अपने तेज से अग्नि को बढ़ाता है और दिन में अग्नि निज तेज से सूरज को बढ़ाता है ऐसा ही देवराज आप का कार्य करते हैं और आप देवराज का काम

(आकाश की ओर देखकर)

अहो रम्भा! मंत्र के बल से कुमार के राज्य अभिषेक की सामिग्री अभी लाओ॥

(रम्भा आई)

रम्भा। राज्य अभिषेक की सब सामिग्री मैं लाई हूं॥
नारद। इस भद्र पीठ पर कुमार को बैठाइये॥

(रम्भा कुमार को भद्र पीठ पर बैठाती है)

नारद। (कुमार के शिर में कलश रोक के)
अहो रम्भा! इसकी शेषविधि करनी चाहिये (कहने के अनुसार पूरा करके)॥
रम्भा। हे पुत्र! श्रीमान् मुनि जी और माता पिता को प्रणाम करो॥

(कुमार सब को प्रणाम करता है)

नारद। मंगल मस्तु॥
राजा। बंश वर्द्धनो भव॥
उर्व्वशी। तुम्हारे पिता के बचन सफल हों॥
(नेपथ्य में दो वैतालिक स्तुति पढ़ते हुए आए)
पहला बेतालिक। युवराज का बिजय हो बिजय हो॥

Digitized by Google

जैसे ब्रह्मा के पुत्र नारद और अत्रि हुए और अत्रि के चन्द्रमा और चन्द्रमा के बुध और बुध के पुत्र यही तुम्हारे पिता पुरूरवा वैसा ही अपने पिता के अनुरूप पुत्र आप हुए सकल लोक संस्थित उत्तम गुणों से सम्पन्न और सर्वोपरि प्रधान आप का बंश आशीर्वादों से परिपूर्ण है ॥

दूसरा वैतालिक। यह राज्य लक्ष्मी पहले तुम्हारे पिता के साथ अनुराग सहित स्थित रही अब जो आप युवराज हुए तो आप की मर्य्यादा और अतुल धीरज देखकर इस प्रकार अधिकतर शोभायमान हुई जैसे हिमाचल पहाड़ और समुद्र को पाके गंगा शोभित होती है ॥

रम्भा। बड़े भाग्य की बात है कि युवराज का अभिषेक देखा और पति के वियोग का विरह भी जाता रहा ॥

उर्व्वशी। इस उदय में सब किसी का भाग्य है ॥

(कुमार को हाथ से धर के)

बेटा। अपनी बड़ी अम्बा को प्रणाम करो ॥

नारद। महाराज! आप के कुअर आयु के युवराज पद की शोभा देख कर मुझे उस समय की सुध आवती है जब सब देवताओं ने मिल के स्वामिकार्तिक को सेनापति के पद पर अभिषेक किया है ॥

राजा। देवराज इन्द्र ने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया ॥

नारद। महाराज! जो इस से भी अधिक आप का प्रिय कार्य हो सो इन्द्र करें ॥

राजा। इस से अधिक मेरा प्रिय कार्य यही है कि मुझ पर देवराज की प्रसन्नता बनी रहे ॥

(भरत मुनि का वाक्य)

Digitized by Google

श्लोक

परस्पर विरोधिन्यो रेक संश्रप दुर्लभम् ।
सङ्गतं श्री सरस्वत्यो भूयादु द्भूतये सताम् ॥ १ ॥
सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्व्वा भद्राणि पश्यतु ॥
सर्व्वः कामान वाप्नोति सर्व्वः सर्व्वच नन्दतु ॥ २ ॥

अर्थात्

आपस में परस्पर विरोध रखनेवाली जो लक्ष्मी सरस्वती हैं उन दोनों का समागम जो परम दुर्लभ है सो सज्जनों के ऐश्वर्य को बढ़ावे ॥ १ ॥

सब कोई दुसह दुख से पार हो जांय और सब कोई कल्याण पद को देखे और सब कोई अपने मनोरथ को प्राप्त हो और सब कोई सब ठौर आनन्द में रहे ॥

(रंगभूमि से सब लोग निकल गए)

श्री महा कवि कालिदास कृत विक्रमोर्व्वशी त्रोटक का अनुवाद समाप्त हुआ ॥

॥ शुभ मस्तु ॥

॥ इति ॥

Digitized by Google

BIBLIOTHECA BODLEIANA

Digitized by Google

Digitized by Google

Digitized by Google